बाल-मनोरंजन-माला—४

आविष्कार और आविष्कारक

लेखक
श्रीरामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'
भूतपूर्व 'बालक'-सम्पादक

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय और पटना

आठ आने
॥)
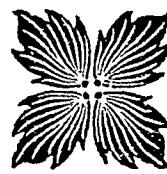
सुनो जी !

इस पुस्तक—आविष्कार और आविष्कारक—को मैंने क्यों लिखा है ? भिन्न-भिन्न भाषाओं की कितनी ही पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को देख-पढ़कर, अपने ढंग से, अपनी खास भली-बुरी भाषा में, इसे लिखकर तुम्हारे पास लाने की ढिठाई मैंने क्यों की है ? क्यों इसे इस प्रकार सुन्दर छपाकर, सजा-सँवारकर, तुम्हारा चंचल मन, इसकी ओर, खींचने की मैंने चेष्टा की है ?

सुनो, आज हमारे बच्चों में—तुमलोगों में—बड़ी सुस्ती, बड़ी काहिली, बड़ी निराशा दीख पड़ती है। किसी नये काम में हाथ डालने की हिम्मत तुमलोगों में—तुम्हारे बड़े लोगों में, हमलोगों में भी—नहीं होती। तुम समझते हो—यह काम बड़ा है, कोई 'बड़ा' आदमी ही इसे कर सकेगा। यह पुस्तक तुम्हारे इसी भ्रम को—भुलावे को, छलावे को—दूर करने के लिये लिखी गई है।

इसे पढ़कर तुम जान सकोगे कि संसार में जितने बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं, उनमें से सैकड़े नब्बे तुम्हारे ही ऐसे 'छोटे'—गरीबी में पले, दुनिया-द्वारा ठुकराये हुए—छोकरों की नन्ही-नन्ही भुजाओं के प्रताप से पूरे हुए हैं। लोग उनकी ओर देखकर हँसते, उनकी करतूतों को पागल की सनक समझकर तालियाँ पीटते, उन्हें खिजाते-कुढ़ाते ही अपना-सा मुँह किये रह गये; और वे—वे पागल—संसार के मुकुट-मणि बन गये ! आज उनकी कीर्त्ति-कथा लिखते-लिखते मेरी लेखनी तृप्त नहीं होती।

सो, यदि इस पुस्तक को पढ़कर तुम्हारे मन में भी दुनिया के लिये किसी उपयोगी चीज के आविष्कार करने की लगन—खब्त—समाई; तुम भी अपनी पढ़ाई के साथ-ही-साथ दुनिया की भलाई की बातों—उसकी जरूरतों और उन जरूरतों के दूर करने के उपायों—पर ध्यान देने लगे; स्टिफेन्सन—हौलैंड, फैरेड, मारकनि, पोल, एडिसन बनने की धुन ने तुम्हारे दिमाग में घर किया; तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल समझूँगा, तभी मेरी आत्मा शान्ति पायेगी।

क्योंकि, मैंने प्रतिज्ञा-सी कर ली है कि अपनी बाकी जिन्दगी में केवल बच्चों ही के लिये लिखूँगा। जहाँ-कहीं, जिस-किसी भाषा में, बच्चों के—तुमलोगों के—योग्य साहित्य पाऊँगा, उसे निस्संकोच अपनी भाषा में तुम्हारे निकट लाऊँगा। मैं जानता हूँ, इसके लिये कितने ही ग्रंथ-कीट समालोचक मुझे चोर-डाकू आदि नाम से पुकारेंगे; कहेंगे—मैंने अमुक ग्रंथ से अमुक कथा चुराई है, आदि-आदि—किन्तु मुझे इनकी परवा नहीं। तुम बड़े होगे, तो स्वयं जान जाओगे कि मैंने कौन-सी कथा कहाँ से ली थी; और किस रूप में, कैसे अच्छे ढंग से, तुम्हारे सामने रक्खा था।

मुझे विश्वास है, बड़े होने पर तुम मुझे अपना पूरा हितकारी समझोगे और इन समालोचकों की करतूतों को याद कर खूब हँसोगे। मुझे गाली मिले या प्रशंसा—मैं तो चुपचाप, अपने भले-बुरे कामों की कोई कैफियत दिये विना, काम करता जाऊँगा देखूँ, कब तक जीता हूँ, और तुम्हें कितनी पुस्तकें दे सकता हूँ!

हाँ, एक बात और। इस पुस्तक में दो-तीन और आविष्कारों की चर्चा एवं कई और आवश्यक चित्र देने थे; किन्तु जल्दी में मैं ऐसा न कर सका अगले संस्करण में यह सब कमी नहीं रहने पायेगी।

'बालक'-कार्यालय
लहेरियासराय

तुम्हारा ही
श्रीरामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'

विषय-सूची

चित्र-सूची

आविष्कार और आविष्कारक

रेलगाड़ी

सुनते हैं, जब पुराने जमाने में कोई जगन्नाथपुरी या रामेश्वर आदि दूर के तीर्थों की यात्रा करने को निकलता था, तब उसके घर में हाय-तोबा मच जाता—रोना चिल्लाना होता, कई-कई दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता। लोग समझते, अब उसका लौटना असम्भव है। किन्तु आजकल की क्या बात है—अभी उस दिन हमारा छोटा भाई विना पूछे घर से भागा और पन्द्रह दिनों में जगन्नाथपुरी से खुशी-खुशी लौट आया। रेलगाड़ी की कृपा से अब सफर करना आसान हो गया है।

जिसने रेलगाड़ी बनाई, सचमुच वह धन्यवाद के योग्य है। तुम्हें सुनकर अचरज होगा, जिसने यह करामात दुनिया के सामने रक्खी, वह एक गरीब का लड़का—ऐसे गरीब का लड़का था, जिसके घर में पहनने-ओढ़ने या खाने-पीने के पूरे सामान भी न थे। उसका नाम था 'जौर्ज-स्टिफन'। १७८१ ई० की नवीं जून को उसका जन्म हुआ था—इँगलैंड-देश के 'न्यूकैसल' शहर में। वही इँगलैंड, जहाँ के लोग हमलोगों पर राज्य करते हैं। जौर्ज के पाँच भाई-बहिन और थे। इस प्रकार उसके परिवार में—वह, उसके माता-पिता और पाँच भाई-बहिन—कुल आठ आदमी थे, जिनमें कमानेवाला एक उसका पिता ही था, जो कोयले की खान में कुली का काम करता था। बड़ी मुश्किल से गुजर होता था। रहने के लिये एक ही मकान, जिसमें रसोई-पानी भी होता, घर के समान भी रक्खे जाते, और सभी लोग सोते भी। इसीसे उसकी गरीबी का अन्दाजा कर लो।

गरीबी के कारण जौर्ज पढ़-लिख नहीं सकता था। बचपन से ही वह भेंड़

और गायें चराता। कुछ दिनों के बाद कोयले की एक खान में घोड़े का साईस बना। खान में वह एक कल देखा करता, जिससे खान का पानी ऊपर निकाला जाता था। वह कल भाफ के जरिये से काम करती थी। जौर्ज को बड़ा अचरज हुआ। वह लड़कपन से ही चतुर और बुद्धिमान् था। उस कल को वह भली-भाँति निहारता, उसके पुर्जों को देखता और मिट्टी से उसकी नकल बनाता। कुछ ही दिनों में वह उस कल के पुर्जे-पुर्जे को पहचान गया और उनके काम को अच्छी तरह समझ गया। वह उस कल की देख-रेख के लिये नियत कर दिया गया।

जौर्ज अपने सहायक के साथ इंजिन का ढाँचा बना रहा है

किन्तु उसकी उत्कंठा दिन-दिन बढ़ने लगी। वह सोचता—क्या कारण है कि कोयला और पानी रख देने से भाफ बनती है, और वह भाफ इस कल में इतनी ताकत ला देती है कि यह हजारों मन पानी फेंक देती है।

जौर्ज से पहले 'वाट' नामक एक लड़का हो गया था—उसी ने भाफ की ताकत का आविष्कार किया था। इस विषय की सब बातें पुस्तकों में लिखी थीं; किन्तु जौर्ज तो पढ़ना-लिखना जानता नहीं था—उन पुस्तकों को पढ़े तो कैसे। अब उसे पढ़ने-लिखने की जरूरत मालूम पड़ी, और वह इस धुन में लग गया।

यद्यपि उस कल में उसे भोर से शाम तक काम करना पड़ता था, तथापि छुट्टी पाते ही रात में वह स्कूल दौड़ जाता। वहाँ चित्त लगाकर पढ़ता। यही नहीं, इन कामा

से जो कुछ समय बचता, उसमें जूतों की मरम्मत कर कुछ और पैसे भी कमा लेता, क्योंकि उसी समय वह एक लड़की से प्रेम करने लगा था, और विवाह करने के लिये कुछ रुपये की जरूरत थी, जिससे वह एक छोटी-सी झोपड़ी अलग बना सके।

वह पढ़-लिख गया, और रुपये भी बचा सका। उसकी शादी भी हो गई, और एक बच्चा भी ईश्वर ने उसे दे दिया; किन्तु अफसोस, कुछ दिनों के बाद उसकी प्यारी स्त्री मर गई। स्त्री के मरने पर वह अधिक रुपया कमाने की नीयत से पैदल 'स्कौटलैंड' गया, और वहाँ से एक वर्ष पर बहुत-कुछ लेकर लौटा; किन्तु यहाँ आने पर देखा, उसका बाप भी अन्धा हो गया है। अब उसको चारों ओर अन्धकार देख पड़ने लगा।

किन्तु वह कर्मवीर था—भाग्य के नाम पर रोनेवाला आलसी और निकम्मा नहीं। उसने इस बार एक दूसरी कोयले की खान में नौकरी कर ली। यहाँ पर भी एक कल पानी निकालने के लिये थी; किन्तु वह बहुत पुरानी थी—अच्छी तरह काम नहीं देती थी। जौर्ज ने खान के मालिक से कहा कि अगर मुझे आज्ञा हो, तो इस कल को दुरुस्त कर पानी निकाल दूँ। उसकी बात सुनकर सब हँस पड़े—जिस काम को बड़े-बड़े इंजीनियर न कर सके, उसको यह आदमी कैसे कर लेगा। किन्तु जौर्ज को बार-बार आग्रह करते देख वे लोग राजी हो गये।

जौर्ज ने कल को खोलकर एक-एक पुर्जा अलग-अलग कर दिया। दो-एक पुर्जे को बदल दिया, और फिर जोड़कर कल खड़ी कर दी। बस, दो ही दिनों में पानी उलीच दिया गया! यह देखकर सभी दंग रह गये। जौर्ज अब सब कलों का अफसर बना दिया गया—मुशाहरा भी काफी बढ़ गया।

यहीं पर उसने पहले-पहल रेल का इंजिन बनाया। खान से कोयला निकालने पर उसे घोड़ा-गाड़ी में ढोकर बाहर लाया जाता था। जौर्ज ने अपने मालिक से कहा—"अगर आज्ञा हो तो मैं एक ऐसा इंजिन बनाऊँ, जो बिना घोड़े के कोयला ढो सके।" सभी को अचरज तो हुआ, किन्तु उसे आज्ञा मिल गई। उसने एक छोटा-सा इंजिन बना ही तो डाला, जो खान के अन्दर ही लोहे की पटरी पर चलता और

पन्द्रह सौ मन का बोझ खींच लेता। इस इंजिन के बनते ही जौर्ज का नाम देश भर में फैल गया। कितने ही खानवाले उससे—ऐसा इंजिन बना देने का—आग्रह करने लगे। उसने पाँच इंजिन बनाकर बेचे भी!

जिस समय जौर्ज की अवस्था ४० वर्ष की थी, 'एडवर्ड-पीज' नामक एक सज्जन रेलगाड़ी बनाने की धुन में थे; किन्तु वह लोहे की पटरी पर घोड़ा-गाड़ी हाँकने का इन्तजाम कर रहे थे। जौर्ज उनके पास गया, और कहा—"अगर मुझे आज्ञा दीजिये, तो मैं ऐसा इंजिन बना दूँ, जिसमें घोड़े की जरूरत न पड़े और वह आप ही तेजी से चले।" पहले तो 'पीज' साहब भी घबराये, किन्तु जब खान में आकर उन्होंने
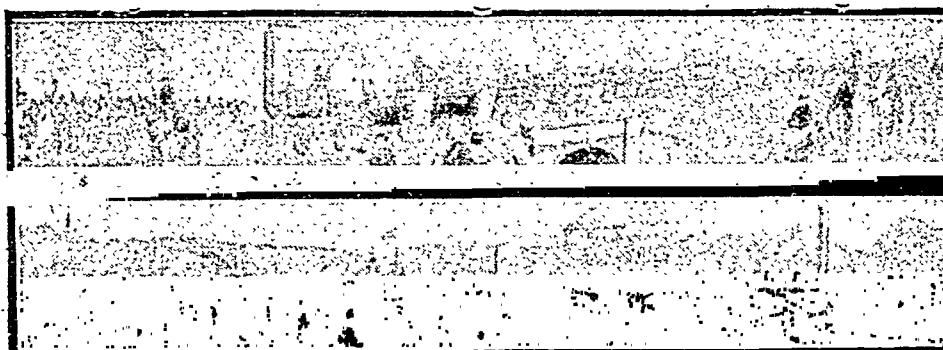
(ऊपर) संसार की पहली रेलगाड़ी चल रही है, (नीचे) उस समय के कुछ इंजिन

जौर्ज का बनाया छोटा इंजिन देखा, तो उन्हें विश्वास हो गया। जौर्ज को उन्होंने इंजिन बनाने का आर्डर दे दिया।

अब जौर्ज ने कोयले की खान को सदा के लिये नमस्कार किया और अबतक की जमा की हुई अपनी पन्द्रह हजार रुपये की पूँजी से रेल की गाड़ियाँ और इंजिन तैयार करने लगा। उसका काम २७ सितम्बर १८२५ ई० (मंगलवार) को खतम हुआ। हजारों आदमी उस रेलगाड़ी का चलना देखने के लिये 'स्टौकटन' में इकट्ठे हुए, जहाँ से संसार की वह सबसे पहली रेलगाड़ी रवाना होनेवाली थी। वे लोग सोचते थे कि गाड़ी कभी न चलेगी और हमें हँसने का पूरा मौका मिलेगा। अफ-सोस! उन्हें ऐसा मौका न मिला।

जौर्ज की रेलगाड़ी रवाना हुई। वह स्वयं हाँक रहा था। उसमें छ मालगाड़ियाँ जुड़ी थीं, जिनमें कोयला और आटा लदा था; और एक सवारी-गाड़ी थी, जिसमें ठसाठस आदमी भरे थे। गाड़ी के आगे-आगे एक आदमी, घोड़े पर सवार, एक बड़ा झंडा फहराता जाता था। उस सवार ने सोचा था कि वह रास्ते भर अपना घोड़ा आगे-आगे ले जा सकेगा; किन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर जौर्ज ने उसे हट जाने की सीटी दी और अपनी रेलगाड़ी को तेज कर उससे आगे बढ़ा दिया! रेलगाड़ी खुशी-खुशी दूसरे स्टेशन पर पहुँची। वहाँ माल उतारकर फिर लौटी। लौटकर 'स्टौकटन' पहुँचने पर देखा गया, छः सौ आदमी गाड़ी पर सवार हैं, जिनमें कोई बैठा है, कोई
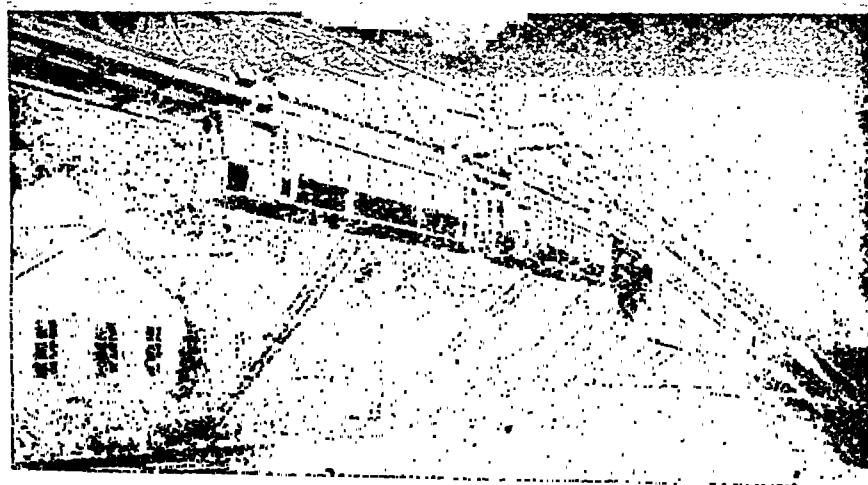
झूलती या लटकती हुई चलनेवाली रेलगाड़ी

खड़ा है, कोई लटक ही रहा है—सभी के मुख पर अचरज और आनन्द की झलक है!

इसके बाद तो जौर्ज की प्रसिद्धि का ठिकाना न रहा। शीघ्र ही उसे 'मैंचेस्टर' और 'लिवरपूल' के बीच रेलगाड़ी बनाने की आज्ञा मिली। किन्तु इसके पहले पार्लियामेंट का सम्मति लेना उचित था। पार्लियामेंट में यह बात पेश होने पर इस विषय में बड़ी-बड़ी बेहूदी बातें कही गई थीं। बड़े-बड़े लोगों ने कहा कि इंजिन फट जायगा और गाड़ियों तथा सवारों का ध्वंस कर देगा—यदि ऐसा न भी हो, तो रेलवे के किनारे के

गाँवों में आग तो जरूर लग जायगी, या उसके धुएँ के विष से जानवर मर जायँगे, उसके ऊपर उड़ते हुए पंछी मरकर गिर पड़ेंगे। समाचारपत्रों ने भी जली-कटी बातें लिखीं; किन्तु जनता को रेलगाड़ी पर विश्वास था। जौर्ज ने रेलगाड़ी बनाई, चलाई और वह सफल हुआ।

जो बचपन में भेंड़ चराता था, अब उसके दर्शन के लिये दूर-दूर से लोग आते थे। देश-देश के राजाओं ने उसे रेलगाड़ी बनाने के आर्डर दिये—वह मालोमाल हो गया। उसका प्यारा बच्चा 'राबर्ट' तबतक बड़ा हो गया था—वह बड़ा ही होशियार निकला। उसने अपने पिता को बड़ी मदद दी।
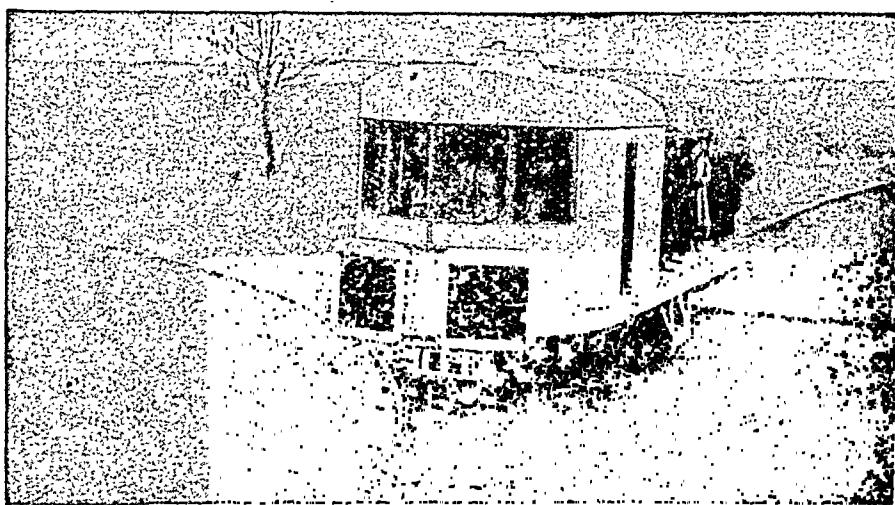
एक ही लाइन पर चलनेवाली रेलगाड़ी

प्रिय बालको! यह तो रेल-गाड़ी की जन्म-कहानी हुई। अब हम तुम्हें यह बतलाना चाहते हैं कि रेलगाड़ी की उन्नति किस दर्जे तक पहुँच चुकी है और अबतक कितने प्रकार की रेल-गाड़ियाँ तैयार हो सकी हैं।

आज तक विज्ञान के जितने आविष्कार हो चुके हैं, उनमें रेलगाड़ी ही सबसे अधिक उपयोगी देख पड़ती है; क्योंकि समुद्री जहाज अथाह जल में चलते हैं, जहाँ मनुष्यों की कोई बस्ती नहीं है; हवाई-जहाज आकाश में उड़ते हैं—वहाँ भी मनुष्य

नहीं बसते। मनुष्य और मनुष्य के काम आनेवाले पशु आदि, पृथ्वी पर बसते हैं और रेल भी पृथ्वी पर ही चलती है। अतएव, मनुष्यों के लिये यह जहाजों से भी कहीं अधिक लाभदायक है। इसपर चढ़कर वे देश-भर में आराम से सफर करते हैं, तीर्थों और मेलों में जाते हैं, दूर-दूर के सगे-सम्बन्धियों से मिल सकते हैं। इतना ही नहीं—गल्ला, मवेशी, लोहा, लकड़ी, पत्थर, कोयला आदि ढोने में भी रेलगाड़ी बड़ा काम देती है। जहाज तो और-और देशों से कच्चा-पक्का माल लाकर समुद्र-तीर पर डाल देते हैं और रेलगाड़ी उसे देश के अन्दर घर-घर पहुँचाती है। अलावा इसके,
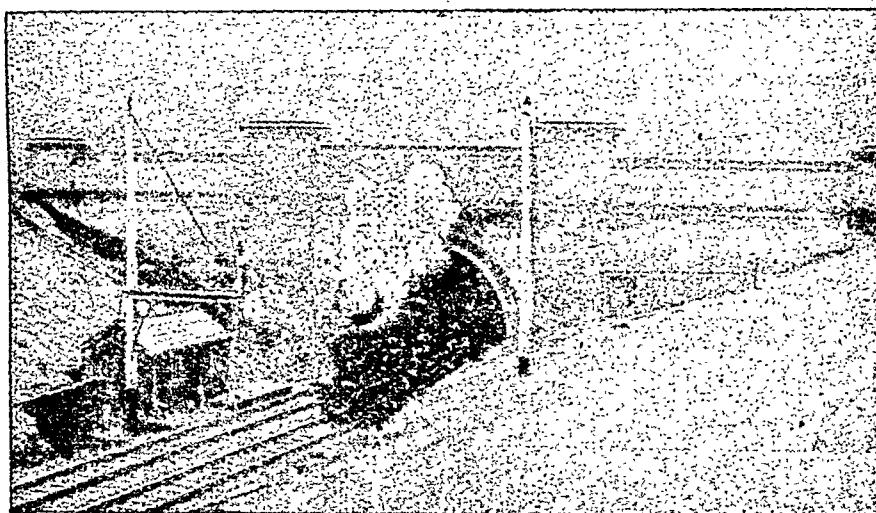
पहाड़ के अन्दर (सुरंग) से निकलती हुई रेलगाड़ी

सबसे बड़ी सुविधा डाक ढोने की है। चिट्ठियाँ, पार्सल, अखबार रेलगाड़ी ही तो ढोती है। अगर वह न होती, तो रोज नये-नये अखबार पढ़ने को कहाँ मिलते? चिट्ठी-पत्री की सुविधा कहाँ मिलती? सोचो तो सही, रेल न होती तो क्या बड़े-बड़े जंगल-पहाड़ और नदी-नाले लाँघकर तुम इतनी आसानी से हजारों कोस का सफर कर पाते? रेल ने ही तो सारे देश में तार का जाल बिछवा दिया है, जिससे हजारों कोस की खबर तुम घर-बैठे घंटों में मँगा लेते हो।

किन्तु जहाज से अगर रेल अधिक उपयोगी है, तो उससे कहीं अधिक इसके चलने में भी कठिनाइयाँ हैं। समुद्री और हवाई जहाजों का रास्ता एक-सा साफ है—न सड़क चाहिये, न पुल। हाँ, तूफान या कल-पुर्जे बिगड़ जाने का खौफ-खतरा अवश्य है; पर रेल के सामने तो अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं—ऊबड़-खाबड़ जमीन, पहाड़ी घाटियाँ, घने जंगल, गहरी खाइयाँ, बड़े-बड़े दल-दल, वेगवती नदियाँ, सुनसान मैदान और धधकती मरुभूमि! पर रेल सबको पार करती है। कहीं कोसों लम्बे पुल, कहीं पहाड़ के नीचे-नीचे अँधेरे रास्ते, कहीं पहाड़ों के बीच-बीच टेढ़ी-मेढ़ी सड़क, कहीं ताड़-बरा-

बिजली के बल से चलनेवाली रेलगाड़ी
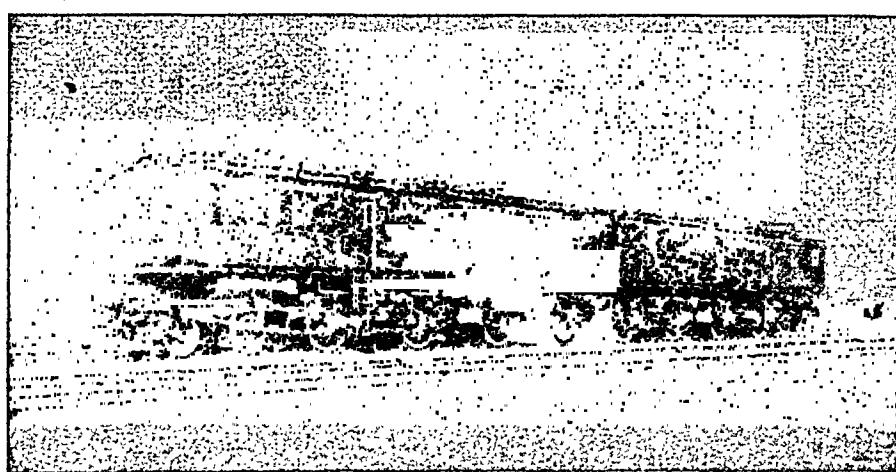
बर ऊँची सड़क, कहीं पाताल-सी गहरी खाई पर लोहे का पुल—मानों रेल की गति के सामने नदी-नाले या जंगल-पहाड़ कोई चीज ही नहीं हैं! कहीं-कहीं जंगल-पहाड़ और मरुभूमि के बीच में भी रेल के चलते शहर और बाजार बस गये हैं। जहाँ कभी जंगली जानवर बसते थे, वहाँ रेल ने आदमियों की चहल-पहल मचा दी है! न इसको आँधी-पानी का डर, न झक्कड़-बवंडर का डर, न सड़कों पर कहीं रोशनी की जरूरत, बेधड़क दनदनाती चली जाती है—अद्भुत शक्ति है इसकी!

कौन जानता था कि एक देगची के ढक्कन को भाफ के जोर से हिलते देखकर

एक साधारण मनुष्य के दिमाग में ऐसी रेल का जन्म होगा, जो सौ वर्ष के अन्दर ही संसार के कोने-कोने में फैल जायगी ! सन् १८२५ में जब पहले-पहल इँगलैंड में रेल चली थी, किसीको आशा भी नहीं थी कि इसका भविष्य इतना उज्ज्वल होगा। उस समय लोग हँसी उड़ाते और तालियाँ पीटते थे; पर आज रेल ने इतनी उन्नति कर ली है कि कोयला-पानी के सिवा वह बिजली के सहारे भी चलने लगी है !

'लुई-ब्रेनन' ने तो केवल एक लाइन पर चलनेवाली रेल भी बना डाली है। ऐसी ही गाड़ी आयरलैंड के 'बेली-बुनियन' नामक स्थान में फी घंटा ८३ मील चलती है। इँगलड के मैंचेस्टर-नगर से लीवरपुल-नगर तक ऐसी ही रेल चलाई जा रही है, जो ३०

खालिस लोहे की बनी हुई बहुत ही मजबूत रेलगाड़ी

मिनट में ३४ मील का रास्ता तय करेगी ! जर्मनी के प्रशिया-प्रान्त में तो कुछ दूर तक झूलती या लटकती हुई रेल भी चलने लगी है। उसमें गाड़ी के ऊपर पहिये लगे होते हैं।

भला ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि रेल की उन्नति अभी और कहाँ तक होगी ? जंगल-पहाड़ छान डाले गये, नदी-नाले बाँध दिये गये ! बस, डर सिर्फ टक्कर का है। वह भी हल हुआ चाहता है। पेंसिलवेनिया में खालिस लोहे की रेलगाड़ी बन चुकी है, जिसमें तनिक भी लकड़ी नहीं लगाई गई है। अब और कुछ दिनों में इन सब तरह की गाड़ियों का प्रचार दुनिया के सब देशों में हो जायगा। चलो, आग और टक्कर से भी जान बची !

मनुष्य की बुद्धि जो न करे सो थोड़ा है !

जहाज

मनुष्य ने जिस प्रकार हवा पर हवाई जहाज द्वारा और पृथ्वी पर रेलगाड़ी द्वारा विजय पाई, उसी प्रकार समुद्र पर विजय पाने के लिये उसने जहाज का आविष्कार किया। आज हमारे शासक अँगरेज हैं। उनका घर हम से हजारों कोस दूर—सात समुद्र पार—है। अगर जहाज न होता, तो क्या वे यहाँ आ सकते? धन्य है वह, जिसने जहाज बनाकर एक देश से दूसरे देश का आना-जाना इतना सहज कर दिया।

भाफ के बल से चलनेवाले जहाजों के बनने से पहले समुद्रों और नदियों में

हल्स　फल्टन　सिमिंग्टन　बेल

पार्सन्स

बड़ी-बड़ी नावों द्वारा आवागमन होता था। वे नावें मजबूत लकड़ियों की बनती थीं। बड़े-बड़े ऊँचे मस्तूल और लम्बे-चौड़े पाल उनपर लगे रहते थे। किन्तु, चाहे कितनी भी बड़ी और मजबूत नाव क्यों न हो, लम्बी यात्रा के लिये उसे हवा के रुख पर निर्भर रहना पड़ता था। उसकी चाल भी धीमी होती थी—आँधी-बवंडर का डर तो उसे पल-पल रहता था।

'वाट' द्वारा भाफ की शक्ति का आविष्कार किये जाने पर कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया कि नावें भी क्यों न भाफ के बल चलाई जायँ! इस विचार का लेकर कितने ही मनुष्य काम करने लगे; किन्तु यह कहना कठिन है कि पहले-पहल सफलता किसको मिली। स्पेन वालों का कहना है कि उनके देश को 'ब्लास्को-डि-ग्रे' नाम के

मनुष्य ने १५४३ ई० में भाफ से चलनेवाले जहाज का आविष्कार किया। फ्रांस वालों का कहना है कि 'डेनिस-पैपिन' नामक एक परिश्रमी बुद्धिमान व्यक्ति ने जहाज का पहले-पहल आविष्कार किया। वह सत्रहवीं शताब्दी में जन्मा था। यद्यपि 'डेनिस-पैपिन' को भी यह श्रेय देने में कुछ लोग आपत्ति करते हैं, तथापि इसमें तो सन्देह नहीं कि उसके प्रयत्न भी जहाज के आविष्कार में एक खास स्थान रखते हैं।

१७३६ ई० में इंगलैंड के 'जोनाथन-हल्स' नामक एक विद्वान् ने एक जहाज 'पेटेंट' कराया, किन्तु यथार्थ काम उसके कई वर्षों बाद हुआ। 'मारकिस-डि-जौफरे' नामक एक फ्रांसीसी, जिसका जन्म १७५१ ई० में हुआ, अपनी २६ वर्ष की अवस्था

'जोनाथन-हल्स' ने इस जहाज को सबसे पहले सन् १७०६ ई० में बनाया था

में, जहाज बनाने के काम में लगा। उसने 'पैपिन' के विचारों को सामने रख काम शुरू किया, और आठ वर्ष के अन्दर ही तीन जहाज बना डाले। पहला जहाज ४० फीट लम्बा था, किन्तु यथार्थ सफलता उसको तीसरे जहाज में ही मिली। वह पूरी सफलता प्राप्त कर लिये होता, अगर उसी समय फ्रांस की इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति न हुई होती। उस क्रान्ति में वह अपना सब काम बन्द कर—जान बचाने को—अमे-

जहाज

मनुष्य ने जिस प्रकार हवा पर हवाई जहाज द्वारा और पृथ्वी पर रेलगाड़ी द्वारा विजय पाई, उसी प्रकार समुद्र पर विजय पाने के लिये उसने जहाज का आविष्कार किया। आज हमारे शासक अँगरेज हैं। उनका घर हम से हजारों कोस दूर—सात समुद्र पार—है। अगर जहाज न होता, तो क्या वे यहाँ आ सकते? धन्य है वह, जिसने जहाज बनाकर एक देश से दूसरे देश का आना-जाना इतना सहज कर दिया।

भाफ के बल से चलनेवाले जहाजों के बनने से पहले समुद्रों और नदियों में

हल्स　फल्टन　सिमिंगटन　बेल

पार्सन्स

बड़ी-बड़ी नावों द्वारा आवागमन होता था। वे नावें मजबूत लकड़ियों की बनती थीं। बड़े-बड़े ऊँचे मस्तूल और लम्बे-चौड़े पाल उनपर लगे रहते थे। किन्तु, चाहे कितनी भी बड़ी और मजबूत नाव क्यों न हो, लम्बी यात्रा के लिये उसे हवा के रुख पर निर्भर रहना पड़ता था। उसकी चाल भी धीमी होती थी—आँधी-बवंडर का डर तो उसे पल-पल रहता था।

'वाट' द्वारा भाफ की शक्ति का आविष्कार किये जाने पर कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया कि नावें भी क्यों न भाफ के बल चलाई जायँ! इस विचार को लेकर कितने ही मनुष्य काम करने लगे; किन्तु यह कहना कठिन है कि पहले-पहल सफलता किसको मिली। स्पेन वालों का कहना है कि उनके देश को 'ब्लास्को-डि-ग्रे' नाम के

मनुष्य ने १५४३ ई० में भाफ से चलनेवाले जहाज का आविष्कार किया। फ्रांस वालों का कहना है कि 'डेनिस-पैपिन' नामक एक परिश्रमी बुद्धिमान् व्यक्ति ने जहाज का पहले-पहल आविष्कार किया। वह सत्रहवीं शताब्दी में जन्मा था। यद्यपि 'डेनिस-पैपिन' को भी यह श्रेय देने में कुछ लोग आपत्ति करते हैं, तथापि इसमें तो सन्देह नहीं कि उसके प्रयत्न भी जहाज के आविष्कार में एक खास स्थान रखते हैं।

१७३६ ई० में इंगलैंड के 'जोनाथन-हल्स' नामक एक विद्वान् ने एक जहाज 'पेटेंट' कराया, किन्तु यथार्थ काम उसके कई वर्षों बाद हुआ। 'मारकिस-डि-जौफरे' नामक एक फ्रांसीसी, जिसका जन्म १७५१ ई० में हुआ, अपनी २६ वर्ष की अवस्था

'जोनाथन-हल्स' ने इस जहाज को सबसे पहले सन् १७०६ ई० में बनाया था

में, जहाज बनाने के काम में लगा। उसने 'पैपिन' के विचारों को सामने रख काम शुरू किया, और आठ वर्ष के अन्दर ही तीन जहाज बना डाले। पहला जहाज ४० फीट लम्बा था, किन्तु यथार्थ सफलता उसको तीसरे जहाज में ही मिली। वह पूरी सफलता प्राप्त कर लिये होता, अगर उसी समय फ्रांस की इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति न हुई होती। उस क्रान्ति में वह अपना सब काम बन्द कर—जान बचाने को—अमे-

जहाज

मनुष्य ने जिस प्रकार हवा पर हवाई जहाज द्वारा और पृथ्वी पर रेलगाड़ी द्वारा विजय पाई, उसी प्रकार समुद्र पर विजय पाने के लिये उसने जहाज का आविष्कार किया। आज हमारे शासक अँगरेज हैं। उनका घर हम से हजारों कोस दूर—सात समुद्र पार—है। अगर जहाज न होता, तो क्या वे यहाँ आ सकते? धन्य है वह, जिसने जहाज बनाकर एक देश से दूसरे देश का आना-जाना इतना सहज कर दिया।

भाफ के बल से चलनेवाले जहाजों के बनने से पहले समुद्रों और नदियों में

हल्स फल्टन सिमिंग्टन बेल पार्सन्स

बड़ी-बड़ी नावों द्वारा आवागमन होता था। वे नावें मजबूत लकड़ियों की बनती थीं। बड़े-बड़े ऊँचे मस्तूल और लम्बे-चौड़े पाल उनपर लगे रहते थे। किन्तु, चाहे कितनी भी बड़ी और मजबूत नाव क्यों न हो, लम्बी यात्रा के लिये उसे हवा के रुख पर निर्भर रहना पड़ता था। उसकी चाल भी धीमी होती थी—आँधी-बवंडर का डर तो उसे पल-पल रहता था।

'वाट' द्वारा भाफ की शक्ति का आविष्कार किये जाने पर कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया कि नावें भी क्यों न भाफ के बल चलाई जायँ! इस विचार को लेकर कितने ही मनुष्य काम करने लगे; किन्तु यह कहना कठिन है कि पहले-पहल सफलता किसको मिली। स्पेन वालों का कहना है कि उनके देश को 'ब्लास्को-डि-गे' नाम के

मनुष्य ने १५४३ ई० में भाफ से चलनेवाले जहाज का आविष्कार किया। फ्रांस वालों का कहना है कि 'डेनिस-पैपिन' नामक एक परिश्रमी बुद्धिमान् व्यक्ति ने जहाज का पहले-पहल आविष्कार किया। वह सत्रहवीं शताब्दी में जन्मा था। यद्यपि 'डेनिस-पैपिन' को भी यह श्रेय देने में कुछ लोग आपत्ति करते हैं, तथापि इसमें तो सन्देह नहीं कि उसके प्रयत्न भी जहाज के आविष्कार में एक खास स्थान रखते हैं।

१७३६ ई० में इंगलैंड के 'जोनाथन-हल्स' नामक एक विद्वान् ने एक जहाज 'पेटेंट' कराया, किन्तु यथार्थ काम उसके कई वर्षों बाद हुआ। 'मारकिस-डि-जौफरे' नामक एक फ्रांसीसी, जिसका जन्म १७५१ ई० में हुआ, अपनी २६ वर्ष की अवस्था

'जोनाथन-हल्स' ने इस जहाज को सबसे पहले सन् १७०६ ई० में बनाया था

में, जहाज बनाने के काम में लगा। उसने 'पैपिन' के विचारों को सामने रख काम शुरू किया, और आठ वष के अन्दर ही तीन जहाज बना डाले। पहला जहाज ४० फीट लम्बा था, किन्तु यथार्थ सफलता उसको तीसरे जहाज में ही मिली। वह पूरी सफलता प्राप्त कर लिये होता, अगर उसी समय फ्रांस की इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति न हुई होती। उस क्रान्ति में वह अपना सब काम बन्द कर—जान बचाने को—अमे-

रिका भाग गया, और जब वहाँ से लौटा तो देखा, दूसरे उसकी पद्धति पर काम कर सम्मान पा रहे हैं। उसे बड़ा दुःख हुआ, और सन् १८३२ ई० में वह मर गया।

इसी समय अमेरिका के दो विद्वान् इंजिनियर 'जेम्स-रैमजे' और 'जौनफिच' इस विषय में कुछ प्रयोग कर रहे थे। इनमें 'रैमजे' का नाम मुख्य है। उसने १७९० में एक जहाज बनाया था, जिसकी बगल में भाफ से चलनेवाले चक्के लगे हुए थे। उस जहाज पर कुछ मुसाफिरों ने सफर किया था। किन्तु वह अमेरिका से फ्रांस आया, ठीक उसी समय जब 'जौफरे' फ्रांस से भाग रहा था, और 'जौफरे' के समान ही फ्रांस की क्रान्ति ने उसको भी बरबाद कर डाला। वहाँ से वह भूखा-प्यासा अमेरिका लौटा, और निराश होकर आत्महत्या कर ली!
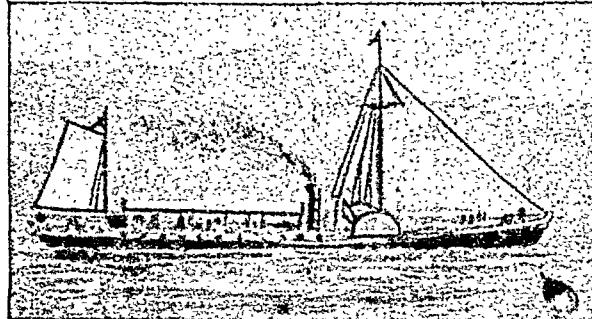
'फल्टन' ने इस व्यापारिक जहाज को सन् १८०७ ई० में बनाया था

यद्यपि इस विषय में अब तक बहुत आदमी काम करते रहे; किन्तु जहाज को व्यापारिक रूप देने का अधिकांश श्रेय 'रौबर्ट-फल्टन' को ही दिया जाता है। इसका जन्म अमेरिका में १७६५ ई० में हुआ था। यह बड़ा ही तेज दिमाग का आदमी था। इसने बहुत-से छोटे-बड़े आविष्कार किये थे—खेत पटाने की कल, संगमरमर काटने छाँटने की कल, रस्सी बटने की कल आदि कितनी ही कलों का आविष्कार किया था। कहते हैं, 'रैमजे' ने इसमें अपना विचार बतलाया था, और अनुरोध भी किया था कि इस ओर प्रयत्न करो।
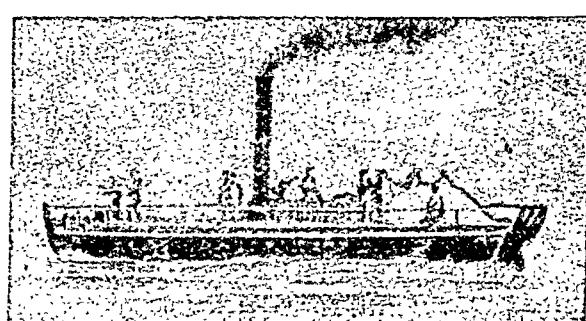
इस जहाज को 'सिमिंगटन' ने सन् १८०३ ई० में बनाया था

१८०३ में फल्टन ने एक जहाज बनाया; किन्तु उसका इंजिन इतना भारी था कि जहाज सर्वस्व लिये-दिये डूब गया।

किन्तु फल्टन ने हिम्मत न हारी। फिर एक दूसरा जहाज जो पहले से खूब मजबूत था, बनाया। किन्तु वह भी बहुत धीमी चाल से चलता था। तब तीसरी बार जो जहाज इसने तैयार किया, उसमें इसको पूरी तरह से सफलता मिली। परन्तु, उस समय नये आविष्कार करनेवालों को कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं, उसका वर्णन इसी के मुख से सुनो—
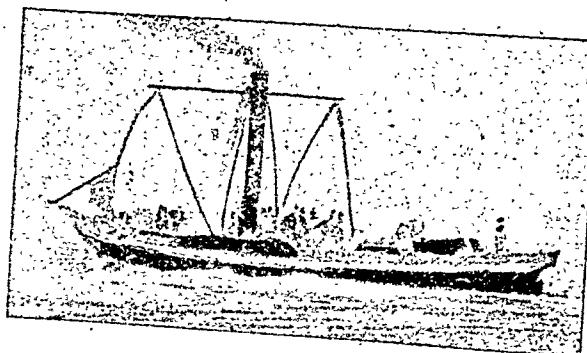
'हेनरी-बेल्' ने इस 'कमेट' नामक जहाज को सन् १८१२ ई० में बनाया था

"जब मैं न्यूयार्क शहर में जहाज बना रहा था, मेरे काम को लोग बड़ी उदासीनता और निरादर की दृष्टि से देखा करते थे। वे उसे निरर्थक कार्य समझते थे। मेरे मित्र बड़े सभ्य थे; किन्तु उनसे भी हमें उत्साह नहीं मिलता था। जब मैं बाहर निकलता था, अपने कारखाने के आसपास लोगों को इकट्ठा होकर फटकारते-दुत्कारते और बेहूदी बातें बकते हुए पाता था। किसीने भी मुझे सहानुभूति, उत्साह और साहस का संदेश न दिया। मेरे काम को लोग 'फल्टन की बेवकूफी' के नाम से पुकारते थे।"
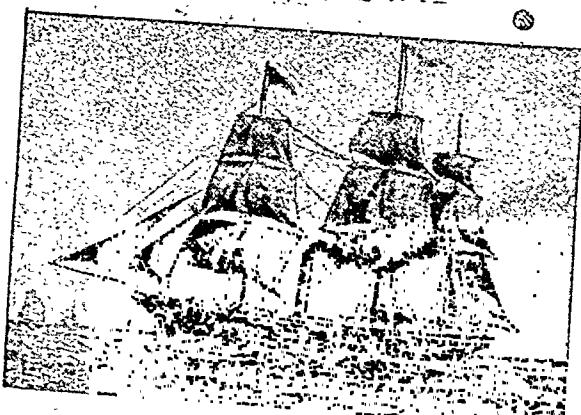
'सवन्ना' नामक अमेरिकन जहाज, जो २७ दिन में १८१९ में, एटलांटिक-महासागर पार हुआ था

किन्तु, आखिर जहाज तैयार हुआ। बहुत-से लोग इस पहले जहाज पर पहली

यात्रा करने को चढ़े। जहाज रवाना हुआ—थोड़ी ही दूर मजे में गया था कि अकस्मात् खड़ा हो गया। लोग तालियाँ पीट-पीटकर लगे कहने—"हम कहते थे, यह निरी बेवकूफी है, भला कहीं ऐसा हो सकता है; ओह! इसपर चढ़कर हम खूब फँसे।"

'फल्टन' भी अचम्भे में आ गया; किन्तु सावधानी से उसने कल को देख-भालकर दुरुस्त कर दिया। जहाज फिर चल पड़ा, और ३२ घंटे में १५० मील तक जा सका! यह जहाज १८०७ ई० में बना था।

इसके १९ वर्ष पहले ही स्कौटलैंड-निवासी 'सिमिंगटन' नामक एक चतुर कारीगर ने एक जहाज बनाया था। इसने पहले-पहल भाफ से चलनेवाला एक ऐसा इंजिन बनाया था, जो सड़कों पर चल सके। उसके बाद एक रईस के लिये एक जहाज बनाया था। इसका दूसरा जहाज 'फोर्थ' और 'क्लाइड'-नदी की नहर में, प्रचंड आँधी के बहते रहने पर भी चार हजार मन बोझ लादे, बीस मील तक मजे में जा सका। यह जहाज 'फल्टन' के जहाज से पाँच वर्ष पहले बन चुका था। 'फल्टन' ने भी इस जहाज को देखा, और इसकी दो-एक बातों को, अपनाया। किन्तु 'सिमिंगटन' अपना कार्य आगे न बढ़ा सका; क्योंकि नहर के मालिकों ने कहा कि ऐसे जहाजों से नहर खराब हो जायगी!

'ग्रेट-वेस्टर्न' नामक अँगरेजी जहाज, जो १८३८ ई० में एटलांटिक-महासागर के पार गया था

'सिमिंगटन' के बाद 'हेनरी-बेल' नामक एक स्कौटलंड-निवासी ने इस काम में हाथ डाला। वह 'सिमिंगटन' के कारखाने में काम कर चुका था, और उसके मन में यह निश्चय हो चुका था कि सफलता हो सकती है। बहुत दिनों तक वह अँगरेज-सरकार से कहता रहा कि मुझे मदद दीजिये, तो बड़े-बड़े जहाज बना दूँ; किन्तु किसी

ने इसपर ध्यान नहीं दिया—लोग उसको बेवकूफ समझते रहे। आखिर कुछ रुपये इकट्ठा करके वह स्वयं बनाने लगा और १८१२ ईसवी में उसने 'कौमेट' नामक एक जहाज तैयार किया। यह जहाज 'क्लाइड'-नदी में पहले-पहल चलाया गया—जब यह फक-फक भक-भक करते, धुआँ और चिनगारियाँ निकालते, हवा और धारा के विरुद्ध चलने लगा, तब लोगों ने समझा कि यह कोई राक्षस है। जब यह किनारे पहुँचा, लोग डर-कर भागने लगे!

'बेल्' की सफलता ने लोगों की आँखें खोल दीं, और धड़ाधड़ नये-नये जहाज
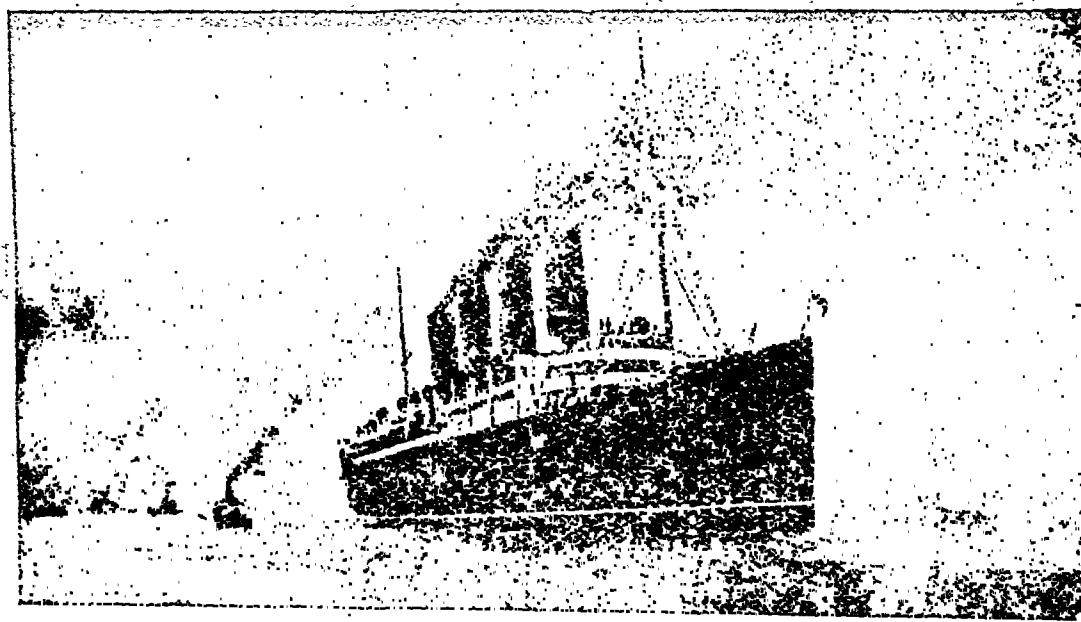
'मौरिटेनिया' नामक जहाज, जो १९०७ ई० में बना था। यह पहले के सब जहाजों से बड़ा और मजबूत है—इसका इंजिन अत्यंत शक्तिशाली है।

बनने लगे। स्कौटलैंड में तो और भी उत्साह फैला। टेम्स, सेवर्न, क्लाइड आदि नदियों में जहाज चलने लगे। यहाँ तक कि १८१८ ईसवी में एक जहाज ग्लासगो से बेलफास्ट तक, समुद्र पार करता हुआ पहुँचा। अब तो बड़ी-बड़ी यात्राओं के लिये मन्सूबे बाँधे जाने लगे। १८१८ ईसवी में ही एक जहाज अमेरिका से इंगलैंड तक लाया गया—यद्यपि उसमें भाफ से चलनेवाला एक इंजिन भी था; किन्तु अधिकांश दूरी उसने

पाल के सहारे ही पार की। यथार्थ में 'एटलांटिक'-महासागर पार करने का पहला श्रेय दो अँगरेजी जहाजों को ही है। १८३८ में ये दो जहाज न्यूयार्क पहुँचे। उनमें एक का नाम था 'ग्रेटवेस्टर्न' और दूसरे का—'सिरिअस'। 'सिरअस' तीन दिन पहले चला था; पर 'ग्रेटवेस्टर्न' के बड़ा और मजबूत होने के कारण दोनों एक ही दिन पहुँचे। 'ग्रेटवेस्टर्न' को इस यात्रा में केवल १४ दिन लगे थे।

अब तो जहाज बनाने में पूरी सफलता मिल गई! जो हँसी उड़ाते थे, वही आँखें फाड़कर देखते और आश्चर्य करते! पहले बगल में चक्के लगाये जाते थे; फिर बीच में लगाये जाने लगे! बगल में चक्के लगाने से असुविधा जँची। थोड़े दिनों के बाद काठ के बदले लोहे के जहाज बनने लगे। अन्त में 'चार्ल्स पार्सन्स' ने जहाज बनाने का तरीका निकाला, जिससे बड़े-से-बड़ा जहाज तैयार किया जा सकता है। संसार का सबसे बड़ा जहाज ९५० फीट लम्बा है, और उसपर ३००० आदमी सवार हो सकते हैं, तो भी वह फी घंटा तीस मील जा सकता है।

पनडुब्बी-जहाज या सब-मेरिन

इंगलैंड से सटा हुआ 'आयरलैंड' नामक टापू है। उसके 'काउंटिकशायर' नामक प्रान्त में एक नौजवान था। वह गरीब लड़का था—अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं। एक स्कूल में मामूली मास्टरी का काम करके अपनी रोटी चलाता था। उसका नाम था 'जॉन पी० हौलैंड'। यही नौजवान 'पनडुब्बी-जहाज या सब-मेरिन' का पिता है।

पनडुब्बी-जहाज या सब-मेरिन का नाम हमारे देश में जर्मनी की लड़ाई के समय, सन् १९१४ ई० में सुना गया था। यह बड़ा ही भयंकर जहाज होता है—पानी के नीचे-ही-नीचे चलता है, चाहे जहाँ ऊपर भी लाया जा सकता है, और छिपे-छिपे शत्रु के जहाज के निकट पहुँचकर उसे तहस-नहस कर चलता बनता है।

जॉन पी० हौलैंड ने जब पहले-पहल पनडुब्बी-जहाज बनाने की कल्पना की, और रात-भर जग-जगकर, बहुत सोच-विचार के बाद, अपनी कल्पना के अनुसार

एक नक्शा भी तैयार किया, तब उसकी बातों पर लोगों ने खूब दिल्लगी उड़ाई। उसके पिता तक ने उसे पागल समझा।

सभी देश और सभी समय में नई बातों की खोज करनेवाले, आविष्कार करनेवाले, पागल समझे जाते हैं। पहले उनकी बातों की दिल्लगी उड़ाई जाती है, वे तंग भी किये जाते हैं, किन्तु अन्त में दुनिया को उनके सामने घुटने टेकने पड़ते हैं—यही नियम है।

हौलैंड ने जब देखा कि अपने देश में मेरे आविष्कार को समझनेवाला और उसे काम में लाने में मदद देनेवाला कोई नहीं है, तब वह अमेरिका चला। उस बीस वर्ष के नौजवान में अपने काम के प्रति ऐसी धुन थी!

हौलैंड अमेरिका पहुँचा—उत्साह और हौसले लेकर। किन्तु वहाँ भी निराशा और दिल्लगी का राज्य पाया! वहाँ के कई पत्र-सम्पादक उससे मिलने आये। उसने अपना नक्शा उन्हें दिखलाया, किन्तु उनके बड़े दिमाग में उसकी बारीक बातें न घुस सकीं। उन्होंने उसे पागल करार दिया—घर का पगला, बाहर भी, 'पगला' नाम से पुकारा जाने लगा।

किन्तु ऐसे बुद्धिमान् 'पागल' अपने धुन के पक्के होते हैं। लोगों की हँसी, दिल्लगी, तिरस्कार और फटकार को सहते हुए भी वे अपना काम किये जाते हैं।

हौलैंड के पास रुपये थे नहीं—गरीब का लड़का था। अमेरिका में भी मास्टरी करना शुरू किया। कुछ रुपये जमाकर लेने पर उसको फिर वही धुन सवार हुई। अपने हाथ से काठ का एक छोटा-सा पनडुब्बी-जहाज बनाना शुरू किया। उसका रूप-रंग सिगरेट के ऐसा था; भीतर एक पिट्रोल-इंजिन लगा था। उसे उठाकर एक तालाब में लाया। अफसोस, काठ का बना होने के कारण उसके भीतर पानी पहुँचने लगा, पेट्रोल-इंजिन भी ठीक से काम न दे सका! पनडुब्बी जहाज का यह नमूना बेकार साबित हुआ। इस पागलपन को देखने के लिये जो भीड़ इकट्ठी हुई थी, उसने ताली पीटना शुरू किया। हौलैंड को रास्ता चलना मुश्किल हो गया। अपमान, तिरस्कार और लज्जा से पागल बने हौलैंड ने उसे तोड़-फोड़कर वहीं सड़ने को छोड़ दिया।

किन्तु उसको अपनी कल्पना पर विश्वास था। उस काठ के नमूने के बनाने के बाद उसके मन में यह बात जम गई कि अगर धातु से बनाया जाय और अच्छा पेट्रोल इंजिन लगाया जाय, तो पनडुब्बी-जहाज जरूर तैयार हो सकता है।

उसे एक सुयोग मिल गया। आयरलैंड के बहुत से लोग उस समय अमेरिका में रहते थे। वे लोग अँगरेजी सरकार के विद्रोही थे, और किसी प्रकार उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले थे। अँगरेजों के जंगी बेड़े संसार-भर में प्रसिद्ध हैं—अँगरेज लोग अपने जहाज के बल पर ही एक-तिहाई पृथ्वी के राजा हैं। वे लोग किसी तरह इन जहाजों को नष्ट करने पर तुले थे। हौलैंड उनसे मिला—अपना नक्शा उन्हें दिखलाया और उन्हें विश्वास दिलाया कि मेरा पनडुब्बी-जहाज अगर तैयार हुआ, तो बात-की-बात में अँगरेजों के बेड़े नष्ट हो जायँगे।

विद्रोही-दल के पास लगभग सवा दो लाख रुपये थे—ये रुपये हौलैंड को सुपुर्द किये गये। बहुत दिनों की अभिलाषा पूरी होने जा रही है! जिसके कारण 'पागल' नाम पाया था, हजार-हजार फटकार और तिरस्कार सहे थे—उसे आज कार्य-रूप में परिणत करने का मौका मिला है, यह सोच-सोचकर वह खिल उठता। बड़े उत्साह और परिश्रम से उसने काम करना शुरू किया। आखिर पनडुब्बी-जहाज तैयार हो गया; किन्तु पूरी सफलता न मिली। वह आसानी से पानी के भीतर चल सकता था, और मजे में पानी के ऊपर भी लाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त उसके भीतर साँस लेने के लिये हवा का भी काफी प्रबन्ध था। इतने पर भी कई दोष थे, जिनको दूर किये विना उसे काम में लाना गैरमुमकिन था।

हौलैंड उन्हें भी दूर करने में लगा। उस पनडुब्बी को देखकर ही विद्रोही दल वालों को विश्वास हो गया था कि सफलता अवश्य मिलेगी। उन्होंने रुपये एकत्र कर उसे दूसरा पनडुब्बी बनाने का आदेश दिया। दूसरा पनडुब्बी भी तैयार हुआ—बिल्कुल चुस्त-दुरुस्त देखकर सभी दंग रह गये। जो अबतक उसकी दिल्लगी उड़ाते थे—वे आँख फाड़-फाड़कर उसे देखने लगे। अखबार वाले भी चुप न रह सके। इस

आविष्कार से समुद्री लड़ाई में युगान्तर मचेगा—इसकी कल्पना-जल्पना होने लगी।

किन्तु उसी समय एक दुर्घटना हुई, जिसके कारण हौलैंड का सब किया-कराया मिट्टी में मिल गया। उस विद्रोही-दल में फूट हो गई। एक सदस्य दूसरे के दुश्मन बन गये। उन्हींमें से कुछ लोगों ने उस पनडुब्बी को लेकर किसी अनजान स्थान में छिपा दिया। हौलैंड के सिर पर तो मानो वज्र गिरा—वह कुछ सोच न सका, शिथिल हो गया—काटो तो खून नहीं।

कुछ दिनों तक हौलैंड चुपचाप बैठा रहा—उसका दिल टूट गया था। इधर यूरोप के कुछ वैज्ञानिक भी पनडुब्बी बनाने की चेष्टा में लगे थे, और अपने राज्य की सहायता पाकर कुछ-कुछ सफलता भी पा रहे थे। जब इस बात की खबर अमेरिका वालों को मिली, तो वहाँ के राज्य की ओर से घोषणा हुई कि देश भर के लोग इस बात पर विचार करें और अपना-अपना नक्शा राज्य को भेजें। हजारों नक्शे पेश किये गये। लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा—जब खबर छपी कि हौलैंड का नक्शा ही राज्य को पसन्द है!

अमेरिका राज्य की ओर से हौलैंड की बुलाहट आई। वह राज्य की ओर से, अपने नक्शे के मुताबिक, पनडुब्बी-जहाज बनाने को भर्ती किया गया। उसकी मदद के लिये बड़े-बड़े इंजिनियर दिये गये। किन्तु इंजिनियर उस अनपढ़े नौजवान से डाह रखने लगे। वे लोग बात-बात में बाधा डालते—उसका बात को तो वे चुटकी में उड़ा देते, और उसपर अपनी योग्यता का रोब जमाते। इसी बीच वह बीमार पड़ गया। इंजिनियरों को मनमानी करने का मौका मिला। इसलिये जो पनडुब्बी-जहाज तैयार हुआ, वह बिलकुल बेकार साबित हुआ। उसे देखते ही हौलैंड इंजिनियरों को गाली देने लगा, और राज्य के अफसरों को उनकी छेड़खानी और शैतानी की बातें कह सुनाईं। पहले तो सभी ने हौलैंड को ही दोषी समझा; किन्तु जाँच करने पर उसकी एक-एक बात सच साबित हुई। वह कलंक से बेदाग बच गया।

असफलता का बार-बार विकट प्रहार होने पर भी हौलैंड का उत्साह कम न हुआ।

इस बार उसने एक कम्पनी खड़ी की। तब तक उसकी खूब प्रसिद्धि हो गई थी। काफी रुपये मिल गये। अपनी इच्छानुसार वह काम करने लगा। १८९८ ई० में काम शुरू हुआ। थोड़े ही दिनों में पनडुब्बी-जहाज तैयार हो गया। उसकी लम्बाई ५४ फीट और मुटाई ११॥ फीट थी। वह ७० टन भारी था। पचास घोड़ों की ताकत की मोटर से वह चलाया जाता। उसीमें दुश्मनों के जहाज को बर्बाद करने के लिये 'टारपीडो' चलाने की कल लगी थी। 'टारपीडो' छोड़ते ही बहता-बहता दुश्मन के जहाज के निकट जाता और वहाँ ऐसा धड़ाका मारता कि जहाज की पेंदी फट जाती, वह डूब जाता। वह पनडुब्बी-जहाज इतनी तेजी से डूबता-उतराता, घूमता-फिरता और चक्कर लगाता कि देखनेवाले को जादू-सा मालूम पड़ता।

हौलैंड की इच्छा पूरी हुई। अमेरिकन सरकार ने उस पनडुब्बी को साढ़े चार लाख में खरीदा और फिर छः नये जहाज बनाने का हुक्म दिया। यूरोप के इँग्लैंड आदि तथा एशिया के जापान आदि देशों के प्रतिनिधि हौलैंड के पास दौड़े हुए पहुँचे और खूब रुपये देकर पनडुब्बी का नक्शा और उसके बनाने के तरीके खरीदे। हौलैंड लखपती हो गया। उसके कम्पनी के हिस्सेदार मालामाल हो गये। किन्तु उसके आविष्कार से दुनिया तबाह हो गई—जर्मनी की लड़ाई में हजारों जानें और अरबों की सम्पत्ति उसीके द्वारा नष्ट हुईं। हौलैंड अपने आविष्कार का फल अपनी आँखों न देख सका—जर्मन-युद्ध आरम्भ होने के दूसरे ही सप्ताह वह मर गया।

हवाई-जहाज

सैकड़ों वर्ष से मनुष्य उड़ने की कोशिश कर रहे हैं। कई उपाय किये गये, पर सफलता न मिली। आखिर 'माटगोफायर' नाम के दो भाइयों ने १८८३ ई० में एक बड़ा-सा गुब्बारा तैयार किया। उसीके सहारे दो आदमी उड़े भी। बारात में जिस ढंग के गुब्बारे (पेटारे) उड़ाये जाते हैं, मौंटगोफायर के गुब्बारे उसी ढंग के थे। धीरे-धीरे उनकी बनावट में सुधार होते गये। उनमें एक ऐब था—जिस रुख हवा बहती थी,

उसी रुख से उड़ सकते थे। हवा के रुख के विरुद्ध वे उड़ नहीं सकते थे। इसके सिवा बीच-बीच में अन्धड़-झक्कड़ आ जाने पर उड़नेवालों की जान आफत में पड़ जाती थी।
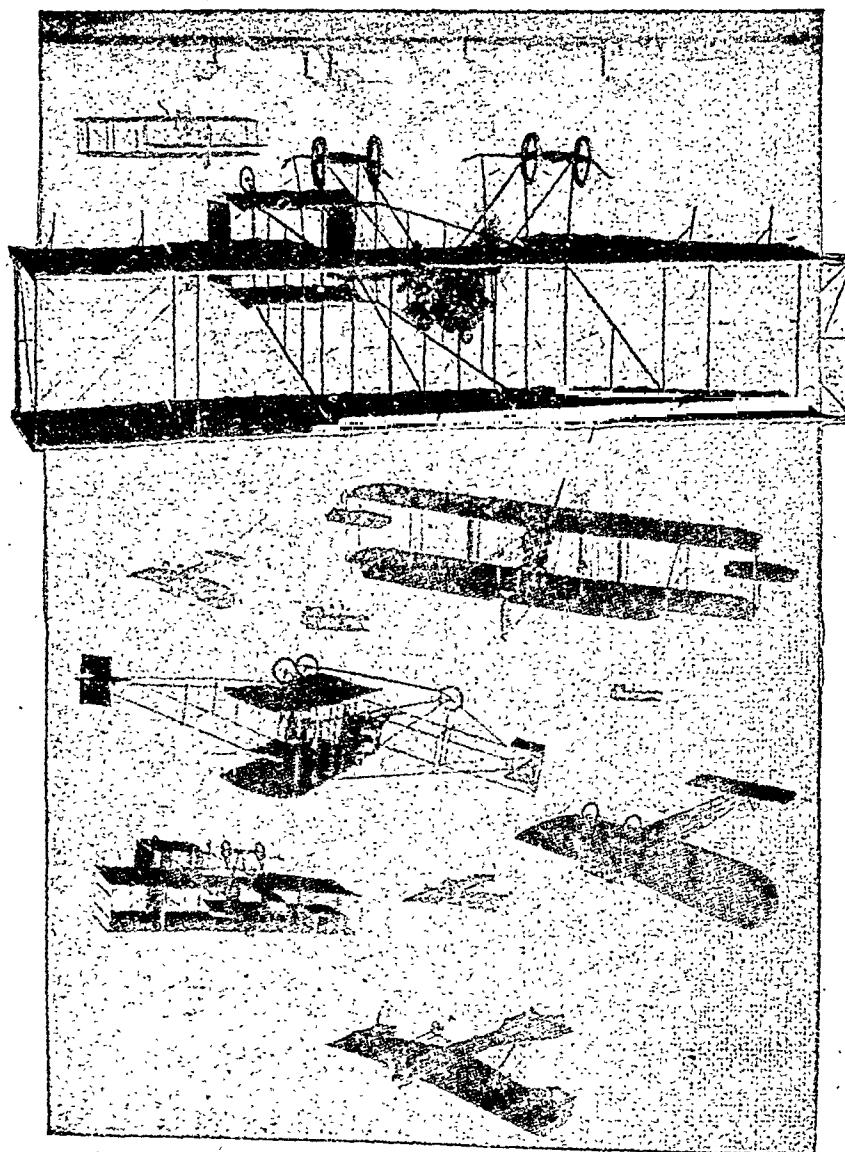
आरम्भिक अवस्था के कुछ हवाई-जहाज

जर्मनी के 'जेपलिन'-साहब और ब्राजिल के 'सैंटोस-डु-मौंट'-साहब ने गुब्बारे

की बनावट में बड़ी उन्नति की। डुमौंट-साहब ने गुब्बारों में एक ऐसी तरकीब लगाई, जिससे वे मनमाने ढंग से घुमाये फिराये जा सकते थे। पेरिस की 'इफेल-टावर' नामक एक इमारत के चारो ओर अपने गुब्बारे को घुमा-फिराकर उन्होंने तीन लाख रुपये का इनाम पाया था। किन्तु गुब्बारे में जेपलिन-साहब ने ही सबसे अधिक उन्नति की। उन्होंने अपने गुब्बारे का ऊपरी भाग पतले टिन का बनाया। उसके भीतर गैस से भरे हुए कई गुब्बारे रक्खे। अब गुब्बारे के फटकर जमीन में एकाएक गिरने का डर न रहा; क्योंकि भीतर के एक-आध गुब्बारे के फट जाने पर दूसरे गुब्बारे उसे गिरने से रोके रहते। गुब्बारे के निचले भाग में ऐसी कलें लगा दीं, जो उसको आसानीसे घुमा-फिरा और चढ़ा-उतार सकती थीं। इसके सिवा मुसाफिरों और जहाजियों के रहने के स्थान भी बना दिये। जहाजियों के अलावा चौबीस आदमी तक बैठ सकते थे। बनानेवाले के नाम के अनुसार ही इस नये गुब्बारे का नाम 'जेपलिन' पड़ा। जर्मनी से लड़ाई छिड़ी, तो जेपलिन-जहाजों ने बड़ा गजब ढाया। इन्हींपर चढ़कर जर्मनीवाले लन्दन और पेरिस पर बम के गोले बरसाते थे
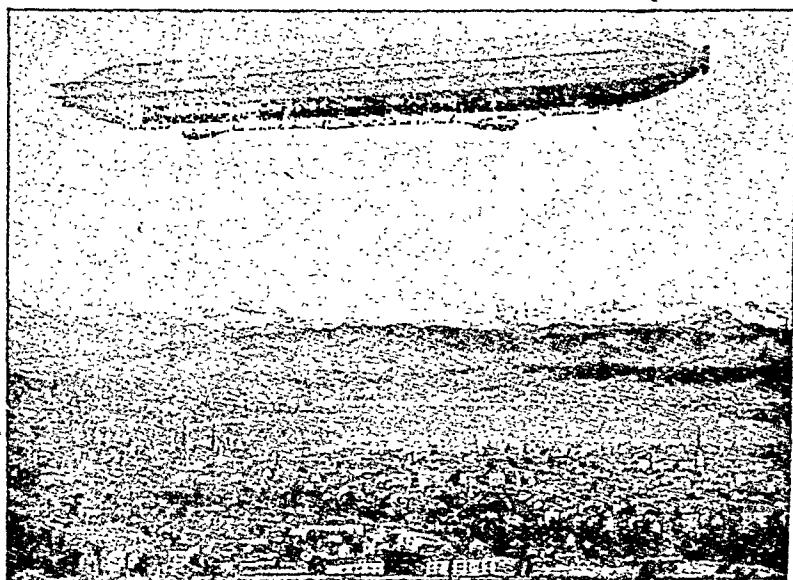
जेपलिन का गुब्बारा

एक ओर लोग गुब्बारे में सुधार कर रहे थे, दूसरी ओर कुछ आदमी ऐसा हवाई-जहाज बनाने की धुन में थे, जिसमें गुब्बारे की तरह गैस भरने की जरूरत न

हो, बल्कि जो चिड़ियों के ऐसा डैनों के सहारे उड़े! गुब्बारा गैस भरकर उड़ाया जाता था, इसलिये उसका आकार भी बड़ा बनाना पड़ता था। बहुत सुधार करने पर भी उसमें कई ऐब थे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी के 'ओक्टो-चैंट' और अमेरिका के 'लिनियन्थल' नामक वैज्ञानिकों ने इस तरह के हवाई-जहाज बनाने की कोशिश की।
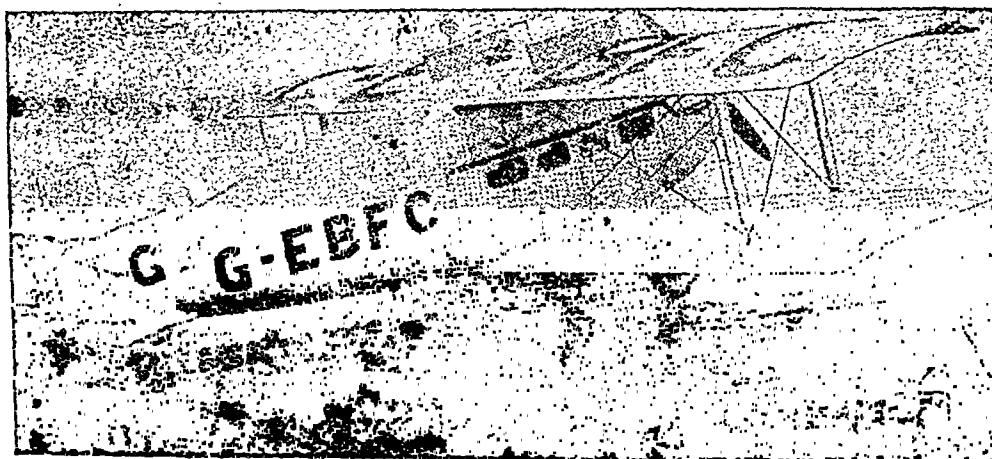
उड़नेवाली मछली या तैरनेवाला हवाई-जहाज

लिनियन्थल को कुछ सफलता भी मिली; किन्तु एक बार हवाई-जहाज बिगड़ जाने के कारण वह पृथ्वी पर गिरकर मर गया। फिर इंगलैंड के प्रसिद्ध आविष्कारक 'सर हिरम-मैक्सिम' ने भी चेष्टा की। कुछ सफलता भी पाई। पर विशेष लाभ न हुआ। इसी प्रकार अमेरिका के 'प्रोफेसर लाँगले' ने वहाँ की सरकार से साढ़े सात लाख रुपये लेकर हवाई-जहाज बनाने का बीड़ा उठाया। पर बेचारे असफल रहे! आखिर सरकारी रुपये बर्बाद करने के कारण लोगों ने उन्हें इतना लज्जित किया कि वह आत्महत्या कर गुजरे।

आखिरकार इस ढंग के हवाई-जहाज बनाने में सफलता पाई अमेरिका के दो नवयुवकों ने। उनका नाम था 'ओरविल-राइट' और 'विलवर-राइट'। वे 'डेटन' नगर में साइकिल मरम्मत करने की दूकान करते थे। १९०० ईसवी में उन्होंने इस काम में

हाथ लगाया। काम में किसी प्रकार के विघ्न पड़ने के डर से वे समुद्र किनारे एकांत में चले गये। वहीं जाँच-पड़ताल शुरू की। १९०३ ईसवी के १७ दिसम्बर को उनका काम पूरा हुआ—हवाई-जहाज का एक ढाँचा तैयार हो गया। उसका आकार उड़नेवाली चिड़ियों से मिलता-जुलता था। बनावट बिलकुल मामूली थी। उसको ऊपर उठाने के लिए एक कल लगी थी। पहले पहल उड़ने पर केवल ५९ मिनट तक वह हवा में ठहर
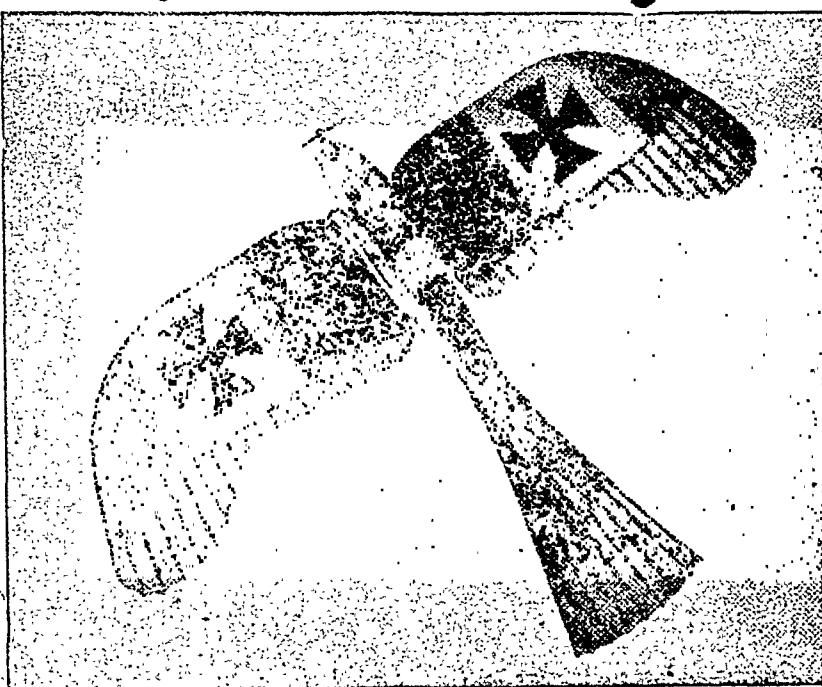
जर्मनी का 'पंडुक'-जहाज

सका। किन्तु, १९०५ में उसपर चौबीस मील का सफर किया गया। फिर १९०८ में विलवर-राइट ने फ्रांस में उसे ५६ मील तक उड़ाया।

यह अद्भुत आविष्कार देखकर संसार दंग रह गया! फिर तो संसार-भर में हवाई-जहाज बनाने का ऐसा जोश फैला कि फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी आदि उन्नत देशों के आविष्कारक इसी धुन में लग गये। फल यह हुआ कि हवाई-जहाज में पहले जो कुछ ऐब थे, धीरे-धीरे दूर होने लगे। अब उसपर बड़ी दूर-दूर का सफर होने लगा।

एक उड़ाकू ने यूरोप के सबसे ऊँचे पहाड़ 'आल्प्स्' को पार किया। एक फ्रांसीसी उड़ाकू ने उनचालिस दिन में तेरह हजार मील का चक्कर काटा। पहले लोग समझते थे कि हवाई-जहाज अधिक-से-अधिक फी घंटा ४०-५० मील ही जा सकता है। किन्तु अब तो सवा-सौ डेढ़-सौ मील तक आसानी से आता-जाता है। अब कितने ही ऐसे आदमी हैं, जो केवल हवाई-जहाज पर ही संसार की यात्रा का शौक पूरा करते हैं। थोड़े ही
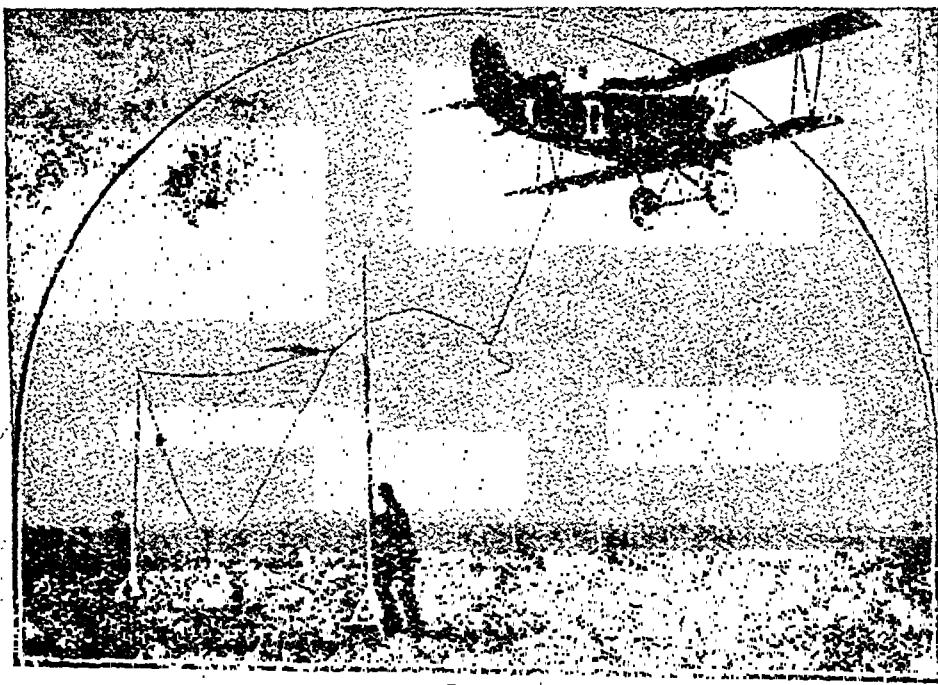
हवाई-जहाज उड़ते हुए ही नीचे से डाक ले रहा है!

दिन हुए, विलायत के कुछ साहब लोग हवाई-जहाज पर दुनिया की सैर करते हुए हिन्दुस्तान में आये थे।

इधर इस चिड़ियानुमा हवाई-जहाज में बहुत उन्नति हुई है। जर्मनीवालों ने एक हवाई-जहाज ऐसा बनाया है, जिसका रूप ठीक चिड़िया से मिलता-जुलता है। उसका नाम भी उन्होंने 'पंडुक' रक्खा है—वह देख भी पड़ता है ठीक पंडुक-ऐसा। पहले हवाई-जहाज के नीचे पहिये लगाये जाते थे। उसीके सहारे वह मैदान में उतारा

जाता था; फिर उसीके सहारे आकाश में चढ़ाया भी जाता था। किन्तु इस प्रकार के पहियावाले जहाज को उतारने-चढ़ाने के लिये लम्बे-चौड़े मैदान की जरूरत होती थी। अब ऐसे हवाई-जहाज बनाये गये हैं, जिनके नीचे पहिये की जगह नाव लगी रहती है। वे किसी भी चौड़ी नदी में आसानी से उतर सकते हैं। फिर वहीं से उड़ भी सकते हैं। उन्हें 'उड़नेवाली मछली' कहते हैं। नाम तो बहुत ठीक है!

इतना सुधार होने पर भी हवाई-जहाज पर चढ़नेवालों को अनेक दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है। अन्धड़-भक्कड़ आ जाने पर हवाई-जहाज विपत्ति में फँस जाते हैं; कितनी ही बार जमीन पर गिरकर चूर-चूर हो जाते हैं; कभी-कभी उलट जाते हैं। इस प्रकार बहुत-से आदमी भी मर जाते हैं। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आकाश में हवाई-जहाज के बहुत ऊपर चढ़ जाने पर चढ़नेवालों को यह अन्दाज नहीं मिलता कि जहाज करवट है या सीधा। कभी-कभी तो इस दुविधा में जहाज एकदम उलट जाता है। किन्तु चतुर जहाजी उसे सीधा भी कर लेते हैं। अब एक ऐसी कल बनी है, जो उन्हें जहाज के सीधा या करवट होने का पता बता देती है। जर्मनी में तो हवाई-जहाज पर ही डाक ढोई जाती है। इससे दूर-दूर की चिट्ठियाँ तुरत मिल जाती हैं। लड़ाई में हवाई-जहाज बड़ा काम देता है। भारत-सरकार भी इंगलैंड से भारत तक हवाई-जहाज पर डाक ढोने का प्रबन्ध कर चुकी है।

बिजली

'बिजली' से तुमने क्या समझा? बादलों से भरे हुए आकाश में कभी-कभी चमक उठनेवाली चंचल लकीरें? नहीं; बिजली को तो तुम आँखों से देख ही नहीं सकते। हाँ, उसके काम को देखकर तुम्हें उसके अस्तित्व का बोध हो सकता है। जब वह एक मेघ से दूसरे मेघ में जाने लगती है, तब केवल उसकी राह चमक उठती है, और उसी राह को तुम बिजली समझ लेते हो! यह तुम्हारा भ्रम है।

अच्छा, तो बिजली है क्या? वह एक 'शक्ति' है, जो संसार के सभी पदार्थों

में पाई जाती है, किन्तु आँखों से नहीं देख पड़ती। हाँ, युक्ति के साथ इस शक्ति—बिजली—को काम में लाकर अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं, देख लो, आज दुनिया में बिजली का ही एकछत्र—अकंटक राज्य है। चतुर मनुष्य इससे अनेक ऐसे कार्य करवाते हैं जिन्हें मनुष्य कर ही नहीं सकता—यह रेलगाड़ियों को दौड़ाती है—एक देश की खबर दूसरे देश में बात-की-बात में पहुँचाती है—घर से अँधेरे को मार भगाती है—गरमियों में पंखा झलती है—कहाँ तक गिनायें, बीमारियों को भी मार भगाती है। किन्तु साथ ही, एक पल में हजारों जानें भी ले सकता है। सावधानी और चतुराई से तुम इससे चाहे जो सेवा करा लो; पर जहाँ तनिक भी चूके कि सर्वनाश!

तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि यद्यपि ऐसी उपयोगी 'शक्ति' संसार में आदि काल से ही मौजूद है, तथापि आज से चार सौ वर्ष तक लोग इसकी स्थिति और उपयोगिता से एकदम अपरिचित थे। सबसे पहले इसका आविष्कार किया 'डाक्टर गिलबर्ट' नामक एक इंगलैंड-निवासी ने। वह वहाँ की इतिहास-प्रसिद्ध महारानी एलिजबेथ का घरेलू डाक्टर था।

ईसवी-सन् के पहले से ही, लोग यह तो जानते थे कि 'कहरुवा' (जिसे संस्कृत में 'कर्पूरमणि' और अँगरेजी में 'Amour' कहते हैं) छोटे-छोटे तृण के टुकड़ों और हलके परों को अपनी ओर खींचने की ताकत रखता है—संस्कृत और हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों में भी 'कहरुवे' के इस गुण का जिक्र है। किन्तु वह क्यों खींचता है, तृणों को खींचनेवाली कौन-सी शक्ति उसमें है—क्या और भी कोई चीज ऐसी है, जो इस प्रकार किसी चीज को खींच सकती है—आदि बातों की खोज-ढूँढ़ किसीने नहीं की थी। गिलबर्ट ने ही पहले पहल इन बातों की छानबीन करना शुरू किया। उसने देखा कि 'कहरुवे' में एक खास तरह की 'शक्ति' है, जो तृणों को खींचती है, और यह शक्ति गंधक आदि और भी कई चीजों में पाई जाती है। चूँकि 'कहरुवे' का ग्रीक-नाम 'एलेक्ट्रन' (Elektron) है, अतः इस शक्ति का नाम 'एलेक्ट्रिसिटी' (Electricity)-

अर्थात् एलेक्ट्रन में पाई जानेवाली शक्ति—रक्खा। संस्कृत में इस शक्ति को 'विद्युत्' कहते हैं और हिन्दी में 'बिजली'।

गिलबर्ट के इस आविष्कार की ओर लोगों का ध्यान गया। आयरलैंड के बोआयले, प्रशिया के ग्यूरिक, जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन आदि ने इस विषय में कुछ-कुछ खोज ढूँढ़ की, और कई नवीन बातें सोच निकालीं।

'हौक्सबे' नामक एक फ्रांसीसी विद्वान् ने यह आविष्कार किया कि काँच की नली को हाथ से खूब रगड़ा जाय, तो कुछ देर के बाद उससे भी बिजली पैदा हो सकती है और वह भी पर, तृण आदि को अपनी ओर खींच सकती है। हाथ से काँच को रगड़ना बड़ा ही कष्टकर कार्य है; इसलिये 'स्टिफेन ग्रे' नामक एक अँगरेज ने यह सोच निकाला कि काँच की नली को रेशमी कपड़े से घिसने पर भी बिजली पैदा हो सकती है। साथ ही, उसने यह भी आविष्कार किया कि पदार्थों के दो भेद हैं—एक वह, जिसके द्वारा बिजली एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सकती है—और दूसरा वह, जिससे ऐसा नहीं किया जा सकता। उनमें से एक का नाम 'परिचालक' है और दूसरे का 'अपरिचालक' रख सकते हो। काँच, रबर, रेशम आदि चीजें 'अपरिचालक' हैं—और ताँबा, लोहा, सूत, मनुष्य का शरीर आदि 'परिचालक' हैं। वह काँच की नली को रेशम से रगड़कर जो बिजली पैदा करता था, उसे सूत के द्वारा ८८९ फीट तक ले जाने में समर्थ हो सका था!

'ग्रे' के बाद बिजली के सम्बन्ध का आविष्कार करनेवालों में 'डूफे' बहुत प्रसिद्ध हुआ। वह फ्रांस-देश का रहनेवाला था। उसने यह आविष्कार किया कि बिजली दो प्रकार की होती है—'पुष्ट' और 'क्षीण' (Positive and Negative)

अब कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान नूतन ढंग से बिजली पैदा करने की ओर गया। 'अलेसैन्ड्रा भोल्टो' (Alessandra Volto) नामक एक इटली देश के वैज्ञानिक ने एक सर्वथा नवीन ढंग से बिजली पैदा करने में सफलता प्राप्त की। बिजली पैदा करने के लिये उसने जिस कल का आविष्कार किया, उसका नाम है—'भोल्टाइक

बैटरी'। आजकल डैनियल, वाइक्रोमेट आदि कई तरह की नवीन 'बैटरियाँ' चली हैं, किन्तु 'एलेक्ट्रिक बैटरी' का पहला आविष्कार करनेवाला यह 'भोल्टो' ही है।

'भोल्टो' के बाद 'माइकेल फैरेड' नामक एक अँगरेज वैज्ञानिक का आविर्भाव हुआ। हम कह सकते हैं कि जिस काम का आरम्भ 'गिलवर्ट' ने किया था, उसकी सफलता-पूर्वक समाप्ति इसीने की। अभी तक बिजली के विषय में खोज ढूँढ़ होती रही थी; किन्तु उसके द्वारा आजकल जो अमानुषिक कार्य किये जाते हैं, उसकी कल्पना भी औरों ने नहीं की थी। फैरेड ने उसमें चुम्बक के सहारे एक ऐसी युक्ति लगाई कि बिजली से तुम चाहे जो काम ले लो—रेलगाड़ी हँकवा लो, लाखों मन का बोझ उठा लो, आदि-आदि।
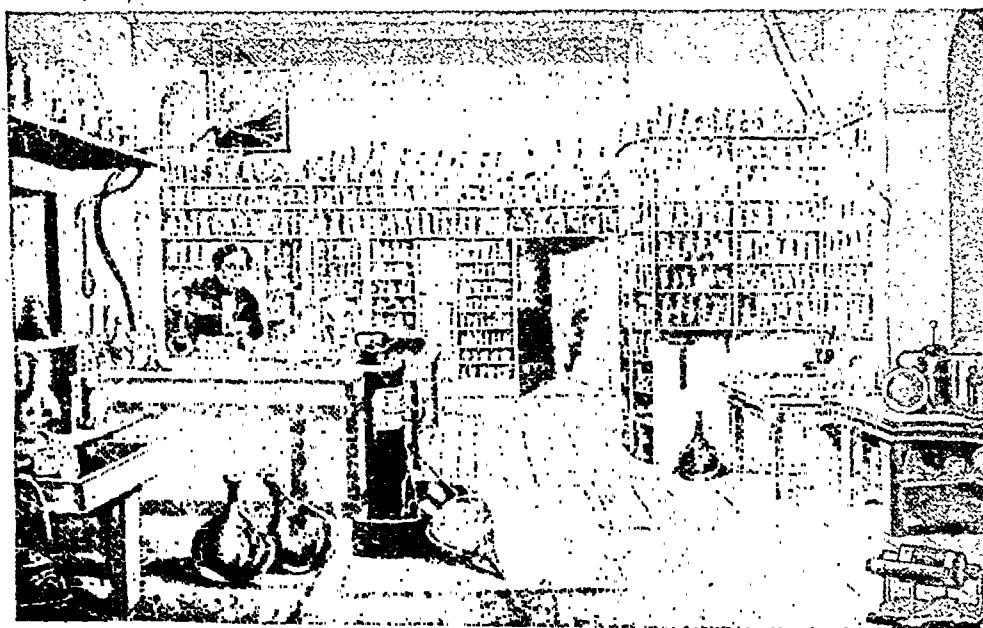
माइकेल-फैरेड 'रायल इन्स्टीट्यूट, की रसायन शाला में बैठकर वैज्ञानिक आविष्कार की क्रिया कर रहा है।

'फैरेड' की जीवनी भी विचित्र है। वह लन्दन के एक गरीब लोहार के घर १७९१ ई० में जन्मा था। गरीबी के कारण वह अधिक लिख-पढ़ न सका। तब वह

जिल्द-बन्दी के काम में भर्ती किया गया। दिन भर वह किताबों की जिल्द बाँधा करता और रात में विज्ञान का अध्ययन करता। एक दिन एक भलेमानस उसकी दूकान पर जाकर देखते हैं कि एक लड़का एक विश्वकोष (Encyclopaedia) की जिल्द बाँध रहा है, और साथ-ही-साथ उसके बिजली-सम्बन्धी लेख को गौर से पढ़ता भी है !

उस भलेमानस को बड़ा अचम्भा हुआ—यह लड़का ऐसा कठिन विषय कैसे पढ़ रहा है ! पूछने पर लड़के ने कहा—दिन-भर काम करते रहने पर भी मैं रात में बिजली सम्बन्धी जाँच-पड़ताल किया करता हूँ, यद्यपि मेरे पास गरीबी के कारण घर की बनी केवल एक 'बैटरी' मात्र है। वह भलेमानस बड़े प्रसन्न हुए और उसे चार प्रवेशपत्र दिये कि इनको लेकर तुम 'सर हम्फ्री-डैभी' के व्याख्यान सुनने के लिये 'रायल इन्स्टीट्यूट' (राजकीय विद्याभवन) में जाना।

फैरेड बड़ा प्रसन्न हुआ, मानों उसे निधि मिल गई हो। वह व्याख्यान सुनने गया, और जो कुछ सुना, उसे नोट करता गया।

व्याख्यान समाप्त होने पर वह डरते-काँपते हुए उस प्रवेशपत्र देनेवाले भलेमानस के पास गया, और उन्हें अपना नोट दिखलाया। वही खुद 'सर हम्फ्रीडैभी' थे ! नोट देखकर बड़े खुश हुए, और उसे अपने साथ रहने का अनुरोध किया।

फैरेड ऐसा मौक़ा कब जाने देता ? 'सर-डैभी' बचपन में स्वयं भी बड़े गरीब थे, अतः इस गरीब लड़के की सहायता करने को तैयार हुए। उनकी देख-रेख में 'फैरेड' ने बड़ी उन्नति की, और बाद को उनका सहकारी होकर उन्हींके साथ काम करने लगा।

फैरेड की जीवनी अचरज-भरी सफलताओं की विस्तृत सुन्दर कहानी है। कुछ ही दिनों में वह अपने आश्रयदाता से भी अधिक प्रसिद्ध हो गया, और तत्कालीन सभी वैज्ञानिकों में वह श्रेष्ठ समझा जाने लगा। उसके व्याख्यान और लेख कठिन विषय पर होते थे; किन्तु वह इतनी सरल भाषा में और ऐसे सुन्दर ढंग से कहता-लिखता था कि बच्चे भी उसके भाव को अच्छी तरह समझ लेते थे।

हमें धन्यवाद देना चाहिये 'फैरेड' को, जिसने बिजली-द्वारा इतने आश्चर्यमय कार्य करने के उपाय हमें बतलाये, और कोशिश करनी चाहिये कि हम भी संसार के लिये किसी आवश्यक पदार्थ का आविष्कार करें।

तार

'तार' का आविष्कार पहले-पहल किसने किया—यह बताना कठिन है। तार का काम बिजली से होता, और जिन लोगों ने बिजली का आविष्कार किया था, उनको तार के आविष्कार का भी बहुत-कुछ श्रेय दिया जा सकता है। 'बिजली' की आविष्कार-कहानी में तुम 'स्टिफेन-ग्रे' के विषय में पढ़ चुके हो कि वह बिजली की लहर को लगभग ९०० फीट तक एक सूत के सहारे ले जाने में समर्थ हो सका था। 'ग्रे' के अतिरिक्त दूसरे-दूसरे बिजली के आविष्कारकों ने जो बिजली के सम्बन्ध में नई-नई खोज की, उनसे तार के आविष्कार में बहुत मदद मिली। खासकर 'फैरेड' की खोज ने तो वैज्ञानिकों के दिमाग में हलचल पैदा कर दी—लोग बिजली के बल पर असाध्य साधन करने पर तुल गये।

१७५३ ई० में—अर्थात् फैरेड के जन्म से लगभग ४० वर्ष पहले ही—एक वैज्ञानिक ने 'स्काटलैंड' में एक लेख छपवाया था, जिसमें उसने बतलाया था कि किस प्रकार बिजली के द्वारा खबरें भेजी जा सकती हैं; किन्तु उस समय तक बिजली के सम्बन्ध में पूरी खोज नहीं हो सकी थी, अतएव किसीने उसकी बातों पर उस समय ध्यान ही नहीं दिया। यहाँ तक कि लोगों को उसका नाम-धाम भी याद नहीं रहा। कोई-कोई कहते हैं कि उसका नाम था 'चार्ल्स मौरिसन'—किन्तु कोई निश्चय नहीं कह सकता कि यह वही था।

तार के आविष्कार को अधिकांश में सफल करने का श्रेय इंगलैंड के 'सर फ्रांसिस रोनाल्ड' को दिया जा सकता है। उनका जन्म लन्दन के एक व्यापारी के घर १७८८ ई० में हुआ था—ठीक उसी समय जब कि बिजली के बारे में बड़ी सर-

गर्मी से छान-बीन हो रही थी। उन्होंने बड़े होने पर अपना ध्यान 'तार' पर आकर्षित किया। अपनी फुलवाड़ी में आठ मील लम्बा तार लेकर वह छान-बीन करने लगे। बाग छोटा था, इसलिये बाग के चारो ओर कई बार वह तार लपेटा गया था। बहुत दिन तक असफलताओं से युद्ध करते-करते अन्त में वह सफल हुए। अपनी प्रसन्नता में ही उन्होंने अँगरेजी-सरकार के सामने अपना नवीन आविष्कार पेश किया।

तबतक बिजली-द्वारा खबरें भेजने का कहीं प्रबन्ध नहीं था, और 'सर रोनाल्ड' ने सोचा था कि सरकार इस अभूतपूर्व आविष्कार के लिये उन्हें सम्मानित कर इससे लाभ उठायगी। किन्तु बात गलत निकली। सरकार ने उन्हें दुत्कार दिया—ठीक उसी तरह, जिस तरह उसने रेल के आविष्कारक 'जौर्ज स्टिफेन्सन' को दुत्कारा था।

'सर फ्रांसिस रोनाल्ड, अपनी फुलवाड़ी में आठ मील लम्बा तार लेकर छानबीन करने लगे

परन्तु सभी आविष्कारकों की तरह रोनाल्ड भी स्वार्थत्यागी पुरुष थे—यश के वह भूखे नहीं थे—बड़े ही हँसमुख थे। सोचा—चलो, मुझे यश न मिला, न सही; किसीको तो यश मिलेगा ही; इसके अतिरिक्त मेरे आविष्कार में कितनी गलतियाँ रह गई हैं—कोई तो इन गलतियों का सुधार कर यशस्वी बनेगा ही। यह सोचकर उन्होंने तार का काम छोड़ दिया। आखिर उनकी कल्पना ठीक

के सम्मिलित प्रयत्न से तार का आविष्कार पूरा हुआ। सर रोनाल्ड अपने जीवन में ही समूचे इंगलैंड में तार-द्वारा खबरें आती-जाती देखकर खुश होते रहे।

इन दो वैज्ञानिकों का सम्मिलन भी बड़ा आश्चर्य-जनक है। 'कुक' का जन्म १८०६ में हुआ था। अपनी जवानी में वह भारत की सेना में काम करता था। पीछे वह डाक्टर बनाया गया था। 'ह्विटस्टन' का जन्म १८०२ ई० में हुआ था। वह एक बाजा बनानेवाले का बेटा था। दोनों को विज्ञान से प्रेम था। दोनों ही 'बिजली' पर छान-बीन करने के शौकीन थे; क्योंकि उस समय बिजली की ओर वैज्ञानिकों का खास झुकाव था।

'ह्विटस्टन' अपने चाचा की बाजे की दूकान पर काम करता था—और उससे बचे हुए समय में पढ़ता-लिखता और छान-बीन किया करता। वह अपने वैज्ञानिक अनु-सन्धान-पूर्ण लेखों के लिये थोड़े ही दिनों में इतना प्रसिद्ध हो गया कि एक कौलेज का प्रोफेसर बनाया गया। वहाँ भी उसने बिजली-संबंधी छान-बीन जारी रक्खी।

'सर चार्ल्स ह्विटस्टन' अपने आविष्कार-यंत्रों—औजारों—का प्रयोग कर रहा है।

इधर 'कुक' जब डाक्टरी पढ़ रहा था, उसको बिजली और तार के सम्बन्ध की बातें मालूम हुईं। उसके तेज दिमाग ने तुरत ही भाँप लिया कि यदि कोशिश की जाय, तो बिजली-द्वारा तार भेजना सम्भव है। वह भारत

से अपने देश इंगलैंड को लौटा। यहाँ आकर उसने 'ह्विटस्टन' से बातचीत की। दोनों लगे एक साथ काम करने।

परिणाम बड़ा ही उज्वल हुआ। 'कुक' बड़ा ही व्यवहार-कुशल था और 'ह्विटस्टन' प्रतिभाशील। दोनों के प्रयत्न से १८३८ ई० में पहले-पहल तार का व्यवहार लन्दन और ब्लैकबाल-रेलवे में हुआ। सभी नई चीजों की तरह पहले इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ थीं, किन्तु धीरे-धीरे सब दुरुस्त हो गईं। पहले एक ही खबर भेजने के लिये पाँच तारों की जरूरत होती थी, फिर दो तार रक्खे गये; किन्तु १८४५ ई० से केवल एक ही तार पर काम होने लगा।

ठीक इसी समय जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि के वैज्ञानिक भी इस विषय में छान-बीन कर रहे थे। किन्तु उन सबमें प्रसिद्ध है अमेरिका का 'सैमुअल फिनले ब्रिज मोर्स'। उसका जन्म १७९१ ई० में हुआ था। वह बड़ा तेज था। उन्नीस वर्ष की उम्र में उसने बी० ए० पास किया था। पहले वह चित्र-कला का काम करता था। वह दो बार यूरोप गया था—एक बार, जब कि वह यूरोप से लौट रहा था, जहाज के यात्रियों में बिजली और तार के सम्बन्ध में बातें छिड़ीं, जिसमें वह भी शामिल था।

मोर्स अपने तार-सम्बन्धी आविष्कार की परीक्षा कर रहा है

बस उसी जहाज पर बिजली-द्वारा खबर भेजने की कल्पना 'मोर्स' के दिमाग

में घुसी। पहले जहाज पर बहुत दिन लगते थे—इसलिये जबतक वह अमेरिका नहीं पहुँचा, बराबर जहाज पर ही इस विषय में सोचता-विचारता रहा। जहाज पर ही उसने इस विषय का एक चित्र भी बनाया, जिसमें तार के यंत्रों का ढाँचा स्पष्ट विदित होता था।

घर आने पर 'मोर्स' तार के सम्बन्ध में काम करने लगा। वह गरीब था, रुपये काफी नहीं थे; किन्तु उसने परिश्रम से मुँह न मोड़ा। आखिर सन् १८३७ में उसने अपना आविष्कार पूरा किया और सरकार से उसकी रजिस्ट्री करा ली। १८४३ ई० में, लगातार कोशिश करने पर, अमेरिका के प्रजातंत्र-राज्य ने उसे आर्थिक सहायता दी।

पहले-पहल १८४४ में, अमेरिका में, तार-द्वारा खबरें भेजी गईं। मोर्स ने जिस पद्धति पर तार-द्वारा खबरें भेजना आरम्भ किया था, उसे लोगों ने बहुत पसन्द किया, और आज भी उसीकी पद्धति पर तार-द्वारा खबरें भेजी जाती हैं!

धीरे-धीरे तार में भी बहुत-से सुधार हुए। जब से नये ढंग के जहाज चले, समुद्र-द्वारा आना-जाना मामूली हो गया। अतः समुद्र होकर भी तार की लाइनें बनाई गईं। पहले जहाँ एक ही खबर भेजने के लिये पाँच तारों की जरूरत पड़ती थी, वहाँ अब नवीन वैज्ञानिकों की छानबीन ने यहाँ तक सम्भव कर डाला है कि एक ही तार से आठ खबरें, एक ही समय में, भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजी जाती हैं।

बे-तार का तार

रेल के स्टेशन पर गाड़ी आने से पहले, तार बाबू के घर में, टिक-टिक टिक-टिक शब्द तुमने अवश्य सुना होगा। तार बाबू अपनी अँगुली से तार की कल को धीरे-धीरे दबाते हैं, उससे टिक-टिक शब्द सुनाई पड़ता है। उस टिक-टिक शब्द से एक प्रकार का कम्पन पैदा होता है, जो बिजली के बल से, तार-द्वारा दूसरे स्टेशन पर पहुँचता है। वहाँ के तार बाबू जब तार की कल को अँगुली से दबाते हैं, ठीक वैसा ही टिक-टिक शब्द उसमें से निकलने लगता है। इस टिक-टिक शब्द को समझने

के लिये एक खास शब्द-कोष होता है, उसी के आधार पर वहाँ के तार बाबू पिछले स्टेशन के तार बाबू की बात समझ जाते हैं, और उसके अनुसार कारवाई करते हैं।

इस प्रकार तार-द्वारा एक जगह से दूसरी जगह खबर भेजना निस्सन्देह अचरज-भरा काम हैं। किन्तु तुम्हें यह सुनकर और भी अचरज होगा कि अब तो विना तार के ही जहाँ-तहाँ समाचार भेजे जाते हैं। उसमें तार की जरूरत बिलकुल नहीं होती, जरूरत होती है केवल तार देने और उसे प्राप्त करने की दो कलों की। तार टूट जाने पर, तार-द्वारा समाचार भेजना असम्भव हो जाता है, किन्तु बे-तार-के-तार में ऐसी कोई झंझट नहीं होती।

इस बे-तार की कल के आविष्कर्त्ता हैं इटली के 'मार्कनि' साहब। १९०७ ई० में उन्होंने इसका आविष्कार किया। इसके पहले ही हमारे देश के आचार्य जगदीशचन्द्र बसु बे-तार की बहुत-सी बातों का आविष्कार कर चुके थे, किन्तु देश-विदेश में बे-तार का समाचार भेजने की कल बनाने का यश मार्कनि साहब को ही है। एटलांटिक महासमुद्र के तीर पर परीक्षा के लिये एक स्टेशन तैयार कर पाँच वर्ष तक वह लगातार चेष्टा करते रहे। अन्त में दूर-दूर देश में वह सहज ही समाचार भेजने में सफल हो सके। मार्कनि साहब के इस आविष्कार को देखकर संसार चकित हो गया। भिन्न-भिन्न देशों के विद्वानों ने उनकी शानदार अभ्यर्थना की, उन्हें अनेकानेक उपाधियाँ दीं। यही नहीं, भिन्न-भिन्न देशों के नरपतियों के मुकुट, इस

सिनेटर मार्कनि

आविष्कार को अपने-अपने राज्य में प्रचलित कराने के लिये, उनके चरणों पर झुक पड़े। मार्कनि साहब को करोड़ों रुपये मिले। आज संसार के सभी सभ्य देशों में बे-तार के तार की कलें हैं—भारत में भी उसके कई स्टेशन हैं।

एक देश से दूसरे देश में समाचार भेजने के लिये, समुद्र के नीचे होकर, बड़ी कठिनाई से तार लगाये गये हैं। फलतः जो जहाज समुद्र होकर जाते हैं, भयानक विपत्ति आने पर भी, वे उस तार से सहायता नहीं ले सकते। किन्तु जिस जहाज पर बे-तार-का-तार होता है, वह विपद की आशंका होते ही, उसके सहारे चारो ओर खबर भेज देता है, और उसी क्षण चारो ओर से अन्य जहाज पहुँचकर उसकी सहायता करते हैं। इस प्रकार कितने हजार मनुष्य और कितने करोड़ का धन इसकी सहायता से डूबने से बचे हैं, उनकी गिनती नहीं। सचमुच इस युग के आविष्कारों में यह सर्व श्रेष्ठ है।

आजकल सभी देशों में बे-तार के तार के खम्भे देख पड़ते हैं। खम्भे खूब ऊँचे रहते हैं, क्योंकि वे जितने ही ऊँचे रहेंगे, उतनी ही अधिक दूर तक समाचार भेज सकेंगे। इँगलैंड में समुद्र के तट पर २७५ हाथ ऊँचा बे-तार के तार का खम्भा है। उस खम्भे के माथे पर दो सौ घोड़े की ताकतवाली बिजली की कल लगी है। इस स्थान से जल अथवा स्थल होकर तीन हजार मील तक खबर पहुँचाई जा सकती है।

कहोगे, विना तार के किस प्रकार खबरें जहाँ-तहाँ भेजी जाती हैं?

हवा में 'इथर' [आकाश] नामक एक पदार्थ है। वह हवा से भी अधिक पतला होता है। पोखरे के जल में ढेला फेंकने पर जिस प्रकार की गोलाकार तरंगें उठती हैं, 'इथर' में जोर से शब्द करने पर उसी प्रकार की तरंगें उठकर चारों ओर दौड़ जाती हैं। बिजली की सहायता से 'इथर' में इस प्रकार की तरंगें पैदा की जाती हैं, जिन्हें बहुत दूर पर लगी बे-तार की कल अपनी ओर खींच लेती है, 'रेडियम' नामक एक प्रकार के पदार्थ की सहायता से इस प्रकार की तरंगें और भी जल्दी-जल्दी पैदा की जाती हैं।

बे-तार के तार के भेजनेवाले जिस घर में बैठकर काम करते हैं, वह इस प्रकार बंद रहता है कि उसके भीतर कोई भी बाहर का शब्द नहीं पहुँच सकता। वहीं बैठकर भेजनेवाले चारो ओर खबरें भेजते हैं।

बे तार के स्टेशन तैयार करने में बहुत खर्च पड़ता है। इंगलैंड के दो स्टेशनों के बनाने में, प्रत्येक के लिये, लगभग दो करोड़ रुपये खर्च हुए थे।

अब तो बे-तार के तार द्वारा समाचार को कौन कहे, चित्र भी भेजे जाते हैं।

———

टेलीफोन

बालको ! तुममें से जो पटना, प्रयाग, दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि बड़े शहरों में रहते हैं, उन्होंने 'टेलीफोन' जरूर देखा होगा। 'टेलीफोन' तार के समान ही एक कल है। किन्तु तार में जो समाचार भेजे जाते हैं, वह 'टिक-टिक टिक-टिक' के संकेत-द्वारा; पर 'टेलीफोन' में समाचार भेजनेवाला खुद पानेवाले से बातचीत कर लेता है—'टेलीफोन' की कल को कान से लगाकर बातचीत करने पर मालूम होता है, तुम जिस आदमी से बातचीत कर रहे हो, वह तुम्हारे सामने खड़ा होकर बोल रहा है—तुम उसकी बोली भी मजे में पहचान ले सकते हो।

'तार' और 'टेलीफोन' में भेद है, यह कुछ अच्छी तरह समझ लो। तार द्वारा यदि तुम्हें कहीं समाचार भेजना होता है, तो एक कागज पर लिखकर उसे तार-आफिस में ले जाते हो, तार-बाबू उसे ले लेते हैं, और कल को अपनी अँगुली से खटखटाने लगते हैं। वह खटखटाने की आवाज तार-द्वारा उस आफिस में पहुँचता है, जहाँ कि उस समाचार को पहुँचना है। वहाँ के तार-बाबू उस 'टिक-टिक टिक-टिक' के इशारे को पहचान लेते हैं—जो कुछ पहले तार-बाबू ने कहा, उसे समझ जाते हैं; और उसे एक कागज पर लिखकर पानेवाले के पास आदमी-द्वारा भेज देते हैं। चूँकि

तार का काम इशारे पर होता है, इसलिये हर-एक आदमी को उसका सीखना और खुद उसके द्वारा भेजना असम्भव है।

'टेलीफोन' में ऐसा नहीं होता। जहाँ 'टेलीफोन' का प्रबंध है, वहाँ का हर-आदमी पैसे खर्च कर अपने घर में उसका सम्बन्ध लगा सकता है, और खुद जिससे चाहे—बात कर सकता है। बात-चीत करने तथा सुनने के लिये एक छोटी-सी, दोमुँहा नली के समान, कल होती है। उसका एक सिरा कान से लगाना पड़ता है, और दूसरा मुँह के निकट रखना पड़ता है। सुननेवाले के पास भी वैसी ही कल रहती है।

चित्र नम्बर १

अब देखो—तुम्हें किसीसे बात करनी है। झट कल उठा लो। उसका एक सिरा कान से सटाकर रक्खो, दूसरा सिरा मुँह के सामने। फिर तुम्हें जिससे बात करनी है—देखो कि उसके टेलीफोन का नम्बर क्या है—[हर एक घर का टेलीफोन नम्बर अलग-अलग होता है)—अपने टेलीफोन में उसी नम्बर को दो तीन बार कहो। ज्योंही तुम बोलोगे—टेलीफोन के हेड-आफिस में वह बात पहुँच जायगी। वहाँ मेमें काम करती हैं। उनमें से एक झट तुमसे पूछ बैठेगी—[यदि तुमने नम्बर धीरे धीरे कहा या नहीं कहा, तो]-Number Please-'नम्बर कहिये'। तुम नम्बर कह दो—अँगरेजी में। टेलीफोन-आफिस में जितने टेलीफोन हैं, सबके नम्बर के बटन अलग-अलग लगे

हैं। ज्योंही तुमने नम्बर कहा—वह तुम्हारे टेलीफोन का सम्बन्ध उस नम्बर के टेली-फोन के बटन से लगा देगी अब तुम जिनसे बातें करना चाहते हो, उनके टेलीफोन की कल की घंटी बज उठेगी—वह समझ जायँगे कि कोई हमसे बातचीत करना चाहता है। बस, वही नली-सी कल उठाकर लगेंगे बात करने। प्रणाम-आशीर्वाद भी कह लो—जो जी में आवे, बतिया लो। मालूम होगा, दोनों आदमी आमने-सामने खड़े घुल-घुलकर बातें कर रहे हों!

चित्र नम्बर २

ऐसे उपयोगी और अचरज-भरे 'टेलीफोन' का आविष्कार किसने किया, यह भी जानना कम मनो-रंजक नहीं है। सुनो—'टेलीफोन का आविष्कार 'अलेक्जेंडर ग्राहम पोल' नामक एक नवयुवक ने किया। उसका जन्म, स्काटलैंड-देश के 'एडिनबरा' नामक नगर में १८४७ ई० में हुआ था। पहले वह 'एडिन-बरा' में ही पढ़ता था, फिर लंदन-विश्वविद्यालय में आकर पढ़ने लगा—जहाँ उसके पिता प्रोफेसर थे। तेईस वर्ष की अवस्था में वह अमेरिका आया। उसके पिता बहरे और गूँगे की शिक्षा में बड़ी दिलचस्पी रखते थे, और उनके पढ़ाने-लिखाने के लिये उन्होंने कई तरीके भी निकाले थे। 'ग्राहम' भी पिता के इस कार्य में बड़े प्रेम से भाग लेता था। अमेरिका आकर उसने गूँगों और बहरों को पढ़ाने-लिखाने में बड़ा नाम पाया।
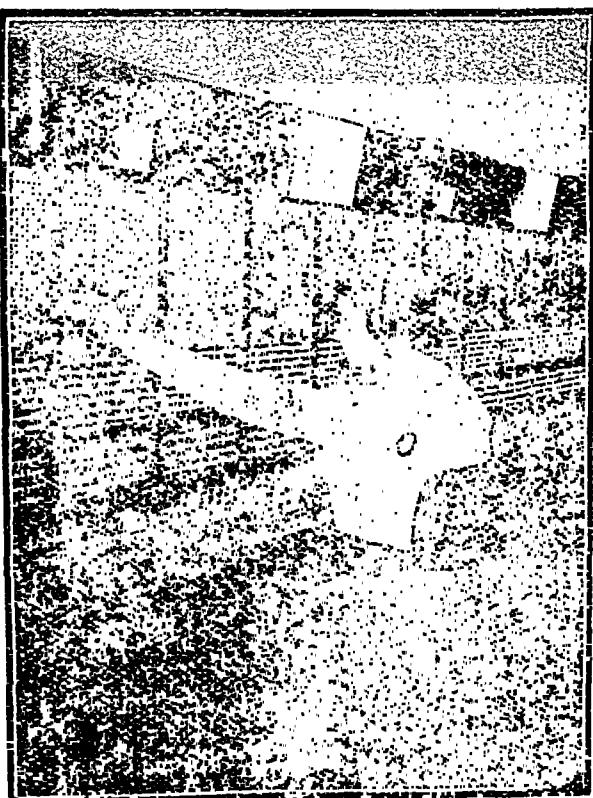
यहाँ तक कि बोस्टन-विश्वविद्यालय ने इस विषय की शिक्षा देने के लिये उसे अपना प्रोफेसर नियत कर लिया।

कुछ दिनों तक प्रोफेसरी करने के बाद वह वहाँ से हट गया, और अपना एक खास स्कूल खोलकर गूँगों-बहरों को शिक्षा देने लगा। इस शुभ काम से जो समय बचता, उसका उपयोग वह विज्ञान के नये-नये आविष्कार सोचने में करता। वह गाने-बजाने से प्रेम रखता था—गाने की कल 'ग्रामोफोन' में भी उसने सुधार किया था। तार की कल में भी आवश्यक सुधार की बात वह सोचा करता था। वह चाहता था कि कोई ऐसा उपाय किया जाय, जिससे एक ही तार-द्वारा एक ही समय भिन्न-भिन्न तरह की खबरें एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जा सकें। इसके अतिरिक्त उसका यह भी विश्वास था कि जब तार-द्वारा एक जगह का संकेत दूसरी जगह भेजा जा सकता है, तब मनुष्य की बोली तार-द्वारा क्यों नहीं भेजी जायगी? किन्तु, चूँकि उस समय वह तार में सुधार करने के विषय में छान-बीन कर रहा था, अतः इस ओर वह पूरी तरह ध्यान न दे सका।

किन्तु बीच में एक ऐसी घटना घटी कि उसको अपनी 'टेलीफोन' वाली बात की सत्यता जँच गई। तार में सुधार करने के लिये अपने साथी 'वाटसन' के साथ वह प्रयोग कर रहा था। दोनों मित्र दो घरों में अलग-अलग रहते थे। उन दोनों घरों में तार का सम्बन्ध लगा दिया गया था। दोनों इसी तार-द्वारा सुधार की परीक्षा करते थे। एक दिन 'वाटसन' जब अपने घर में बैठा तार की कल की देख-भाल कर रहा था कि अचानक उसके 'स्प्रिंग' में गड़बड़ी हो गई, और कई बार सुधारने पर भी जब स्प्रिंग दुरुस्त न हुआ, तब क्रोध में आकर वह उसे हथौड़े से पीटने लगा। इधर 'ग्राहम' अपने घर में बैठा अपनी कल को देख रहा था—उसे मालूम हुआ कि उसकी कल खूब हिल रही है। उसने घबराकर उस कल को अपने कान से लगाया, तब तो स्प्रिंग पर हथौड़े मारने का 'टन्-टन्-टन्' शब्द उसे साफ-साफ सुनाई पड़ा! कुछ देर तक तो वह हकाबक्का रहा—फिर दौड़कर 'वाटसन' के घर में गया—वहाँ देखता क्या है कि वह ताबड़तोड़ हथौड़ा मार रहा है!

उस समय 'ग्राहम' की खुशी का ठिकाना न रहा! सोचा—जब हथौड़े की चोट को आवाज तार-द्वारा सुनाई पड़ सकती है, तो भला मनुष्य की आवाज क्यों न सुनाई पड़ेगी। बड़े ही उत्साह से उसने 'वाटसन' से अपने मन की बात बतलाई। 'वाटसन' भी बड़ा प्रसन्न हुआ। बस, तार में सुधार की बात छोड़ इस नई कल के बनाने की ओर दोनों मित्र झुके। 'वाटसन' कल-पुर्जे बनाने में बड़ा उस्ताद था—'ग्राहम' के कहने के मुताबिक उस तार की कल में सुधार कर उसे टेलीफोन की कल बना डाला! एक दिन वह अपनी कोठरी में बैठा उस कल को हाथ में लिये था, कि एकाएक उसमें से यह आवाज सुन पड़ी—मिस्टर वाटसन! इधर आओ, एक जरूरी काम है।

यह ग्राहम की बोली थी! संसार में पहले-पहल टेलीफोन में यही शब्द कहा गया! दोनों मित्रों के आनन्द का ठिकाना न रहा! 'ग्राहम' दौड़ा हुआ अमेरिका के पेटेंट-आफिस में आया, और अपनी इस नई कल (टेलीफोन) की रजिस्ट्री कराने की दरख्वास्त दी। आश्चर्य की बात तो यह है कि पेटेंट-आफिस में उसके दरख्वास्त देने के कुछ ही मिनट बाद 'ग्रे' नामक एक और आदमी वहाँ आया, और उसने भी दरख्वास्त दी कि मैंने टेलीफोन का आविष्कार किया है! किन्तु, चूँकि ग्राहम की दरख्वास्त पहले पहुँच चुकी थी, इसलिये 'ग्रे' की दरख्वास्त नामंजूर की गई। संसार ने 'ग्राहम पोल' को ही टेलीफोन का प्रथम आविष्कर्त्ता माना!

आज-कल जिधर देखो, उधर ही टेलीफ़ोन की बहार है! बड़े-बड़े शहरों में घर-घर टेलीफोन लगे हैं। कहीं जाने-आने की जरूरत नहीं; जिससे जब चाहो, गप-शप कर लो!

——————

ग्रामोफोन

बालको! तुमने ग्रामोफोन या फोनोग्राफ तो जरूर देखा होगा। उसका गाना, उसकी रामायण, उसकी सत्यनारायण-कथा, और उसकी हँसी तो अवश्य सुनी होगी।

कुत्ते का भाँव भाँव, बिल्ली की म्यों-म्यों, चिड़ियों की चहचह, या रेलगाड़ी का भों-भों उस छोटी-सी कल में सुनकर तुम कितने खुश होते होगे!

किन्तु क्या कभी तुमने विचारा भी है कि ऐसा क्यों होता है? क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विना जीव का पदार्थ गाना गावे और बोलियाँ बोले? तुममें से कितने अबोध बालक तो सोचते होंगे कि हो-न-हो इस कल के बाकस में कोई आदमी छिपकर बैठा है। मैं भी जब बच्चा, था तो पहले-पहल ऐसा ही सोचता था। किन्तु बात ऐसी नहीं है। न तो इसमें कोई जादू-टोना या नजरबन्द का खेल है, और न कोई आदमी सिमटकर उस बाकस में बैठा है। असल में यह विज्ञान की महिमा है। जिस विज्ञान के बल पर रेल दौड़ती है, हवाई-जहाज पर चढ़कर लोग आकाश में उड़ते हैं, तार द्वारा एक क्षण में ही कहीं की खबर कहीं पहुँच जाती है, उसी विज्ञान का यह अदना खेल है।

किसी आविष्कार के विषय में कुछ जानने के पहले एक बात सदा ध्यान में रक्खो—बड़े-बड़े काम का आरम्भ छोटे-से-छोटे रूप में ही होता है। रेल, तार, छापाखाना, कपड़े की मिल आदि को जो हम आज इस उन्नत अवस्था में देखते हैं, पहले-पहल वे सब बहुत ही छोटे और भद्दे रूप में आरम्भ किये गये थे। धीरे-धीरे उनमें सुधार किये जाने पर वे इस वर्त्तमान रूप में आये हैं। अब भी यह सुधार का काम जारी है। उन्हें अधिक-से-अधिक लाभदायक बनाने की कोशिशें हो रही हैं। सौ पचास वर्ष के अन्दर ही उनका क्या रूप हो जायगा, कोई कह नहीं सकता!

आज से लगभग तीन हजार वर्ष पहले की बात है। चीन-देश का एक सूबेदार राजधानी से लगभग दो हजार कोस की दूरी पर रहता था। एक समय उसको चीन-नरेश के पास एक आवश्यक समाचार भेजने की आवश्यकता हुई। वह समाचार बहुत ही आवश्यक और गुप्त था। उसके खुल जाने से राज्य की भारी हानि होने का भय था। इसलिये किसी दूत के द्वारा कहलाना या चिट्ठी लिखकर भेजना उचित नहीं था। कई कारणों से वह अपने सूबे से हटकर राजधानी को जा भी नहीं सकता था। अन्त

में उसने बहुत सोच-विचारकर, अत्यन्त परिश्रम और बुद्धिमानी से, एक बाक्स (सन्दूक) तैयार किया। उसमें अपना संदेश कहकर उसका मुँह (ढक्कन) अच्छी तरह बन्द कर दिया, और राजा के पास भेज दिया।

राजा ने ज्योंही उस बक्स को खोला, सूबेदार की सभी बातें सुनाई पड़ने लगीं! इतना ही नहीं, वह आवाज भी ठीक-ठीक सूबेदार की आवाज से मिलती-जुलती थी!

यही 'ग्रामोफोन' के जन्म की आदि-कथा कही जा सकती है।

चीन-देश में इस प्रकार समाचार भेजने की रीति खूब प्रचलित हुई। लड़ाई के समय, शत्रुओं पर भेद खुल जाने के डर से, गुप्त समाचार अधिकतर इसी प्रकार भेजे जाते थे। वहाँ की—दो हजार वर्ष पहले की—पुस्तकों में इस प्रकार समाचार भेजने की चर्चा पाई जाती है। यहाँ तक कि बाक्स के बदले ताँबे के छड़ में भी शब्द भरकर भेजे जाते थे।

इस प्रकार शब्द को बाँध कर एक जगह बन्द रखने की कला पुराने मिस्र-देश में भी पाई जाती थी। वहाँ की सुप्रसिद्ध 'मेमन' नामक कब्रों से नाना प्रकार के गीत आप-ही-आप सुन पड़ते थे। कहते हैं, फारस-निवासी 'गार्गा पियाडस' नामक एक विद्वान ने भी 'बोलनेवाली कल' का आविष्कार किया था।

यूरोप में भी प्राचीन काल से ही ग्रामोफोन वा 'बोलनेवाली कल' के बनाने के प्रयत्न हो रहे थे। १२६४ ई० में 'राजर बेकन' नामक एक आदमी ने लोहे की एक मूर्ति बनाई थी। उसमें कुछ ऐसे पुर्जे लगे थे कि वह मूर्ति बोलती थी। उसकी आवाज साफ-साफ सुनी जाती थी।

इटली-देश के 'पोर्टा' नामक एक सुप्रसिद्ध मनुष्य १५८० ई० में एक नल में शब्द को कैद कर रक्खा था। चाहे जब वह लोगों को नल-द्वारा शब्द सुनाकर आश्चर्य में डाल देता था। इसी प्रकार १६८२ ई० में 'एफ० ग्रैंडलर' नामक एक जर्मनी-निवासी आँख के डाक्टर ने काँच की एक बोतल में शब्द को बन्द कर रक्खा था। वह जब-तब उस बोतल की आवाज सुनाकर लोगों को चकित कर देता था।

सुप्रसिद्ध गणितज्ञ 'लिओनार्ड ह्वीलर' ने भी सन् १७६१ में एक 'बोलनेवाली कल' बनाने के कुछ उपाय सोचे थे। उन्होंने समाचारपत्रों में अपने सोचे हुए उपाय छपवा दिये। उसी रीति के अनुसार १७९७ ई० में सिटर्सबर्ग की विज्ञान-सभा एक प्रकार की 'बोलने की कल' बनाने में सफल हो सकी थी।

१८५९ ई० में 'कोनिग' नामक एक जर्मन ने भी 'स्काट' नामक एक अँगरेज की सहायता से 'फोनो-ओटोग्राफ' नामक एक कल बनाई थी। यह कल तबतक की बनी सभी कलों से अच्छी निकली। आज-कल का ग्रामोफोन इसी कल का सुधारा और सँवारा हुआ रूप है—ऐसा कहा जा सकता है।

यद्यपि बहुत पुराने जमाने से ग्रामोफोन बनाने के यत्न होते आ रहे थे, और इस विषय में क्रमशः बहुत-कुछ सफलता भी मिलती आ रही थी, तथापि ग्रामोफोन के आविष्कर्ता होने का सारा श्रेय अमेरिका-निवासी 'एडिसन' साहब को ही दिया जाता है। उन्होंने ही ग्रामोफोन को उसके आज कल के रूप में तैयार किया है। इसकी कथा भी बड़ी विचित्र है। सुनो—

१८७६ ई० में एडिसन साहब 'टेलीफोन' में कुछ आवश्यक सुधार करने के प्रयत्न में थे। शब्दों के अधिक कम्पन को दूर करने के लिये टेलीफोन के किसी पतले आवरण-युक्त भाग में एक सुई घुसाकर वह उसे अँगुली से दबाये हुए थे। अकस्मात् सुई उनकी अँगुली में घुस गई। लहू की दो-चार बूँदें टपक पड़ीं। उसी समय उन्होंने सुई के अगले भाग की ओर से एक प्रकार का शब्द निकलते हुए सुना। सुनकर वह समझ गये कि ग्रामोफोन बनाने में अब अवश्य सफलता मिलेगी। फिर तो थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने उसे बनाकर संसार को चकित ही कर दिया।

'एडिसन' साहब को अपने जीवन-काल में ही अपनी कीर्ति-लता को फूला-फला और संसार-भर में फैला हुआ देखकर कैसा आनन्द हुआ होगा?

'एडिसन' साहब के आविष्कार के बाद 'टेलीफोन' के आविष्कर्ता 'अलेक-जेंडर-ग्राहमपोल' ने अपने दो सहकारियों के साथ १८९१ ई० में इस काम के लिये एक

कम्पनी खड़ी की, और आज-कल के ढंग का ग्रामोफोन बनाकर संसार के बाजार में चलाया।

अमेरिका-प्रवासी 'एमिल-वार्लिनर' ने, 'सूस' नामक एक मिस्त्री की सहायता से, नली या चूड़ी वाले ग्रामोफोन के बदले गोल चक्का वाला ग्रामोफोन बनवाया। उसी ने इसके तवे (Record) में भी बहुत-कुछ सुधार किया, इस 'बोलनेवाली कल' का नाम भी 'ग्रामोफोन' रक्खा। 'हिज मास्टर्स व्हायस' (His Master's Voice) नामक कुत्ते की छाप वाला ग्रामोफोन उसीका बनाया हुआ है।

ग्रामोफोन में पहले कल-काँटे अधिक नहीं थे। 'रेकर्ड' बजाने के समय उसे हाथ से ही घुमाना पड़ता था। बाद को घड़ी के समान उसमें कल-पुर्जे लगाये गये, जिससे अब वह खुद घूमता है। पर अब तो बिजली के बल पर भी ग्रामोफोन के तवे घुमाये जाते हैं!

इसी तरह के और भी कई सुधार हुए। पहले रेकर्ड बजाने के समय कुछ भद्दे शब्द सुन पड़ते थे। 'जोन्स' नामक एक अमेरिकन ने बहुत छान-बीन के बाद उस ऐब को भी दूर कर दिया।

फिर, रेकर्ड के गीत सुनने के लिये पहले रबर की एक नली कान में लगानी पड़ती थी। जिसके पास वह नली होती थी, वही शब्द सुन सकता था। तब, इस ऐब को भी दूर करने के लिये ग्रामोफोन में भोंपू बनाया गया। किन्तु अब तो विना भोंपू के भी ग्रामोफोन के शब्द सुन पड़ते हैं। सच पूछो तो ऐसे ग्रामोफोन में बाकस के भीतर ही भोंपू छिपा रहता है।

हँगरी-राज्य में 'मीकीफोन' नामक एक तरह का ग्रामोफोन चला है। वह देखने में एक छोटी-सी घड़ी के बराबर है। घड़ी के समान ही उसमें भी चाबी देनी पड़ती है। शीशे के एक ग्लास पर उसे रखकर चाबी दे दो, बस बारह तवे तक गीत सुनते जाओ! आवाज भी साफ, मीठी और ऊँची होती है—घर-भर के लोग सुन सकते हैं।

इतना ही क्यों, 'फोटोफोन' नामक एक प्रकार की दूसरी कल भी बनी है।

उसमें गानेवाले की तस्वीर भी दीख पड़ती है। और अब तो ग्रामोफोन में गाने के साथ-साथ नाच का भी ऐसा प्रबंध हो रहा है कि गानेवाला अगर नचनिया है, तो बाजे पर उसकी मूर्ति नाचती हुई दीख पड़ेगी।

धन्य है विज्ञान की लीला!

छापाखाना

बालको, तुम अच्छी तरह जानते हो कि यह पुस्तक हज़ारों की तादाद में छपा कर तुम लोगों के पास पहुँचाई गई है। सादा कागज पर कलम से जो कुछ लिखकर हमने छापाखाने में भेजा है, उसे छापाखाने वाले ने नये-नये ढंग के सुन्दर अक्षरों में सजाकर छापा। सोचो तो अगर छापाखाना न होता, तो कैसा अंधेर होता। आज जो हजारों लड़के इस पुस्तक को पढ़ते और आनंद उठाते हैं, क्या वे ऐसा कर सकते? अकेले हम लाख कोशिशें कर के भी दो-चार दस प्रतियों से अधिक नहीं लिख पाते; फिर हज़ारों लड़कों का मनोरंजन किस प्रकार कर सकते? इसके सिवा यह तरह-तरह के अक्षर और सुन्दर-सुन्दर चित्र कहाँ नसीब होते? धन्य है वह महापुरुष, जिसने छापाखाने का आविष्कर किया!

वह मनुष्य-जाति के हार्दिक धन्यवाद का पात्र है।

विद्वानों का कहना है कि छापाखाने का आविष्कार पहले-पहल चीन-देश में हुआ। आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले की बात है, चीन-देश के चतुर राजमंत्री 'फुँगतेओ' ने काठ पर अक्षर खाद उसमें रोशनाई लगाकर सबसे पहले छापने का काम शुरू किया। किन्तु चीन-देश में इस जरूरी कला की इससे अधिक उन्नति न हो सकी। आजकल जो छापाखाने देखे जाते हैं, उनकी उन्नति का सारा श्रेय यूरोप-वालों को ही दिया जा सकता है।

१२८५ ई० से यूरोप में भी लकड़ी के अक्षरवाले छापाखाने का काम शुरू हुआ।

कहते हैं, यूरोपवालों ने चीनवालों से ही लकड़ी का छापा बनाना सीखा था। किन्तु वर्तमान ढंग के छापाखानों का आविष्कारक 'गटनबर्ग' नामक जर्मन था। उसका जन्म जर्मनी के 'मेंज' नगर में हुआ था। किन्तु जब उसकी अवस्था दस वर्ष की थी, तभी वहाँ के धनियों और गरीबों में बड़ा झगड़ा हो गया। इसलिये उसके माता-पिता उसे लेकर 'स्ट्रासबर्ग' नामक स्थान में चले आये। तब से वह वहीं रहने लगा। सयाना होने पर उसने आइने का कारबार शुरू किया, पर उसमें उसे सफलता न मिली।

गटनबर्ग

असफल होने पर उसके मन में छापाखाने की कल बनाने की धुन समाई। इसलिये १४४६ ई० में छापाखाना खोलने की इच्छा से वह अपने जन्मस्थान 'मेंज' नगर में आया। वह गरीब था, अतः 'जौनफास्ट' नामक एक आदमी से रुपये कर्ज लेकर कल-काँटे बनाने लगा। इस काम में 'स्कूफर' नामक एक बढ़ई ने उसे बड़ी सहायता दी।

गटनबर्ग ने पहले काठ के अक्षर बनाये, किन्तु वे टिकाऊ नहीं थे। उसके साथी 'स्कूफर' ने अक्षरों का साँचा बना दिया, जिसमें अक्षर ढाले जाने लगे। कल-काँटे तैयार होने पर इस छापाखाने में गटनबर्ग ने, १४५५ ई० में, पहले-पहल 'बाइबिल' ग्रन्थ छापा। यह ग्रन्थ दो भागों में छपा। इसकी भाषा लैटिन थी। इसके छापने में गटनबर्ग को छः हजार रुपया खर्च करना पड़ा था।

किन्तु गटनबर्ग इस छापाखाने को अधिक दिन तक चला नहीं सका। उसका महाजन 'जौनफास्ट' रुपये के लिये उसे तंग करने लगा। यहाँ तक कि उस दुष्ट ने, दिमाग और शरीर घुलाकर बनाये हुए, उसके छापाखाने को भी जब्त कर लिया।

छापाखाने से इस प्रकार जबरदस्ती हटाये जाने से गटनबर्ग का दिल टूट गया। कुछ समय तक कष्ट से दिन काटकर वह मर गया!! पर उसकी कीर्त्ति तो अमर थी। उसके बनाये हुए सुगम रास्ते पर चलने को अनेक जन खड़े हुए। जर्मनी और इटली में धड़ाधड़ छापाखाने खुलने लगे।

'विलियम-कैक्स्टन' नामक एक अँगरेज जर्मनी में पहुँचा और छापाखाने की कला सीखकर घर लौटा। १४७६ ई० में उसने 'वेस्ट-मिन्स्टरऐबी' में एक छापाखाना खोला। फिर उसकी मृत्यु के बाद 'किन-डी-वार्डी' नामक एक कर्मचारी के हाथ में उस छापाखाने का प्रबन्ध-सूत्र आया। उसने छापाखाने में अनेक सुधार किये और लगभग चार सौ पुस्तकें भी छापीं।

'विलयम कैक्सटन' अपने छापाखाने में छपा हुआ पहला कागज (प्रूफ) पढ़ रहा है।

धीरे-धीरे छापाखाने का प्रचार बढ़ता गया। उसमें अनेक सुधार भी होते गये। सबसे बड़ा सुधार किया—१८१४ ई० में—'कैनिंग' नामक एक जर्मन ने। लन्दन के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'टाइम्स' के लिये उसने दो कलें बनाईं, जो भाफ के बल से चलतीं और एक घंटे में ११०० कागज छापतीं। इन्हीं कलों में कुछ और सुधार कर देने पर घंटे में १८०० कागज छपने लगे। फिर १८१५ ई० में कैनिंग ने ही एक ऐसी कल बनाई, जिसमें फी घंटा ७५० कागज दुपीठा छपने लगे।

कुछ दिनों के बाद 'कूपर' और 'एपिलगेट' नामक दो सज्जनों ने एक और भी अच्छी कल बनाई, जो घंटे में पाँच हजार कागज छापने लग गई। किन्तु अब एक नये ही ढंग की छापे की कल चली है—उसका नाम है 'टाइप-रिवालविंग मशीन'—जो घंटे

में तीन लाख कागज छापती है। केवल छापती ही नहीं है, साथ-ही-साथ छपे हुए कागज को काटती और भाँजती भी जाती है।

तुम्हें यह जानने की उत्कंठा होगी कि नागरी-अक्षरों का छापाखाना कब खुला, और किसने खोला। अच्छा, सुनो—नागरी-अक्षरों का छापाखाना खोलने का यश बम्बई के एक गुजराती व्यापारी श्रीभीमजी-पारिख को है। आपने १६७० ईसवी में, विलायत के ईस्ट इंडिया-कम्पनी के संचालकों के पास, छापाखाना चलानेवाला एक आदमी भेजने के लिये अर्जी दी। पहली बार ८००) मासिक पर एक आदमी आया। पर वह होशियार नहीं था। पुनः निवेदन करने पर १६७८ ई० में कम्पनी के संचालकों ने एक प्रवीण व्यक्ति को भेजा। उसी की सहायता से भीमजी ने नागरी अक्षर ढलवाये। तब से अब तक हिन्दी के छापाखाने में भी बराबर उन्नति हो रही है। तो भी, अँगरेजी छापाखानों के मुकाबले, हिन्दी के छापाखाने अभी बहुत अंशों में अपूर्ण हैं।

भगवान करें, तुममें से ऐसे कार्य-कुशल युवक निकलें, जो हिन्दी के छापाखानों के ऐब दूर कर उन्हें और भी उन्नत अवस्था पर पहुँचावें।

——

उपन्यास-कहानी-जगत् के उज्ज्वल नव-रत्न !

१—देहाती दुनिया

यह ठेठ देहाती घटनाओं से पूर्ण एक सामाजिक मौलिक उपन्यास है। वर्णनशैली रोचक और सजीव एवं कथात्मक रोचक और चित्ताकर्षक है। सुन्दर और उत्कृष्ट भाषा लिखने में सिद्धहस्त बाबू शिवपूजन सहाय ने देहातियों के लिये उपयुक्त ठेठ हिन्दी में इस उपन्यास को लिखकर अपने लेखन-कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। सजिल्द १॥)

—सम्मेलन-पत्रिका

२—प्रेम-पथ

एक मौलिक सामाजिक उपन्यास है। कहानी, लेखक की शैली, भाषा, चरित्र चित्रण तथा भाव इतने सुन्दर, प्रिय, साहित्यिक और मनोहर हैं कि पाठक मानों भावों के उद्यान में विचर रहे हैं। सजिल्द, २) —प्रताप

३—प्रेमिका

जगत्प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका 'मेरी कॉरेली' के सर्वोत्तम उपन्यास 'थेलमा' का सरस अनुवाद। आदर्श दाम्पत्य प्रेम का चितचोर चित्र। दिल की सच्ची लगन का नफीस फोटो। सचित्र, सजिल्द २॥)

४—अशान्त

एक सामाजिक चित्रण है। खूब दिलचस्प और सुन्दर है। कहानी-प्रेमियों को अवश्य पढ़ना चाहिये, और देखना चाहिये कि हमारा आधुनिक कहानी-साहित्य किस तेजीसे आगे बढ़ रहा है—मतवाला

चरित्र सभी स्वाभाविक हैं मालूम होता है कि यह कहीं का विवरण है। कहानी मनोरंजक है। मौलिक उपन्यास लिखने का प्रयास सफल हुआ है। आवरण नेत्ररंजक, मूल्य ।|) —दैनिक 'आज'

५—विमाता

थोड़े ही समय में हजारों कापियों का बिक जाना इसकी लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सुसम्पादित और सुसज्जित तीसरा संस्करण भी खप चला। लोग लट्टू हैं। सजिल्द, २)

६—जयमाल

एशिया-खण्ड के यशस्वी उपन्यास-लेखक श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के 'परिणीता' नामक प्रेमपूर्ण सामाजिक उपन्यास का भावमय सरल अनुवाद। मनुष्य के अन्तस्तल का सच्चा चित्र। सचित्र, ।=)

७—पुरुष-परीक्षा

इस पुस्तक की उत्कृष्टता के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह महामहोपाध्याय मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति ठाकुर की मूल-संस्कृत रचना का सरल हिन्दी-अनुवाद है; यद्यपि यह 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र' के ढंग की है, तथापि इसकी कथायें कल्पित नहीं शुद्ध ऐतिहासिक हैं। गद्यपद्यमय ललित नैतिक उपदेश बड़ी ही मनोरंजक कथाओं द्वारा दिये गये हैं। सजिल्द, १)

८—महिला-महत्त्व

इसकी भाषा सरसा, सालंकारा और सानुप्रासा है—संस्कृत-गद्यकाव्य कादम्बरी की छटा दिखाई पड़ती है। —ब्राह्मणसर्वस्व

सचित्र, मू० २)

९—यूथिका

इसमें साहित्यिक, ऐतिहासिक और सामाजिक आठ अनूठी कहानियाँ हैं। भाषा अत्यन्त ललित मधुर, वर्णन-शैली परम हृदयग्राहिणी है। छपाई-सफाई तो देखने ही योग्य है। सचित्र, मूल्य ॥)

पता—पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय और पटना